कबीर साहित्य

एक मूल्यांकन

(Kabir Literature: An Evaluation)

राम पाल सिंह

कबीर साहित्य : एक मूल्यांकन

कबीर साहित्य : एक मूल्यांकन

(Kabir Literature: An Evaluation)

राम पाल सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5464-2

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। बीजक में वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**कबीर साहित्य**	**1**
	कबीर का प्रेम	18
2.	**कबीर का जीवन परिचय**	**22**
	जन्म	25
	जन्मस्थान	26
	बचपन	27
	जुलाहा	27
	शिक्षा	29
	गुरु दीक्षा	30
	मृत्यु	32
	हजारी प्रसाद द्विवेदी	32
	कबीर का जीवन दर्शन	32
	हिन्दू-मुस्लिम एकता	33
	कबीर की महिमा	34
	कवीर का चरित्र-चित्रण। कबीर की कुछ चारित्रिक विशेषता	35
3.	**कबीरदास की भाषा और शैली**	**43**
	पंचमेल खिचड़ी भाषा	45

कबीरदास 46
कबीरदास का भक्त रूप 47
4. कबीर की सामाजिक चेतना 49
कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम 61
कबीर की सामाजिक चेतना और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता 69
5. कबीर की भक्ति 71
कबीर का जन्म और विवादों का साया 74
माध्यम मार्ग का अनुसरण 80
बाह्य आडम्बरों का विरोध 80
6. कबीरपंथ 82
शाखाएँ 82
विस्तार 83
कल्पनाएँ 84
प्रमुख ग्रंथ 84
एकेश्वरवादी 85
मत-विरोधाभास 85
निर्गुणमार्गी पंथ 86
7. कबीर ग्रंथावली 87
भक्त संतों की परंपरा 90
शिष्य 101
व्यावहारिक सिद्धांत 109
काव्यत्व 121
भाषा 123
उपसंहार 126
8. कबीर के दोहे 128
9. बीजक 135
मौखिक उपदेश 135
बीजक मूल ग्रंथ 136
बीजक का मुद्रण 137
बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ 139
बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व 139

बीजक की अनेक टीकाएँ 140
10. कबीर के पद –कबीर 141
साखी 141
छंदो में प्रयोग 142
11. कबीर का समकालीन समाज 144
समकालीन भारतीय संस्कृति 145
12. कबीर की रचनाएँ 147
बीजक 148
कबीर रचनावली 148
अवधू और अवधूत 149
कबीर की आवश्यकता और मूल्यांकन 151

1

कबीर साहित्य

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन-जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप की उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़, प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमोला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत् के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आस-पास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ़ के पास मानता है।

कबीर जब हुए, देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व

कायम करना ही नहीं, बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था–कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुड़ी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जडकारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीन ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं–भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की।

क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलत: मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड क्यो जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।। " इसी चिंतन में कबीर कहते हैं–"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है–बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।। " तथा "पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।"

प्रेम साध्य भी है–साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है, अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुत: आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया–"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि। " कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्त:करण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहे न बाँधी रे। " कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान।। " वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।। " और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार

का झगड़ा छूटै नाहिं। " कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खड़े-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय। " सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।। " इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।। " आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूड़े धार में–चढ़ पाथर की नाव।"

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू-मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़ग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।। " इतना ही नहीं इससे भी बढ़कर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।। " ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।। " कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था, उन्होंने बताया "मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मूंड ते भेड़ न बैकुंठ जाए।। " कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।। " मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा–"जारि वारि

कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।। " समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं–यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ। "

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे, उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान। " राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल। " कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो। " कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा–"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में। "

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम। "

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजों में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के

उथल-पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदयिक भेद-भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के लिए निमित्त संत-कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलत: आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में, उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रुप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाज।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

कबीर-व्यवहार में भेद-भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध-अवरोध तथा समग्र द्वैत-अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू-मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनष्य को मिटाकर, उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनष्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से उन्होंने हिदूं-मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू-मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया। भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव-पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढ़ेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग-जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द-साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। कबीर ने अपने समय और अब हमलोग भी एक दिन चले जाएँगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अल्प है। इस अवधि का सदुपयोग इस स्मरण में करना चाहिए। सांसारिक हर्ष-विषाद को विशेष महत्व नहीं देना चाहिए।

पंडितों का ढ़ोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो सो भी साहब लगता है,
ऊँचा-निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते हैं। कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढ़ंग से खुब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्त्तव्य निर्विकार रुप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ो, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो। "

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुःख -दर्द को दूर करने के लिए "राम रसायन" का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विफलता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश की अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रुढ़ियों पर जिस साहस और शक्ति से प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अद्योगति को बड़ी करुणा से देख कर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभिषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे-शत्रु को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता का त्रण मिल सकता हैअतः उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
करे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

कब उनके अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ-साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर हिंदू-मुस्लिम के भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आंवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

ऊँच-नीच, जाति-पाति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरुरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन-शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हो चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति-धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान-पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन

ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र-मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा-सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु थै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन-साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख-आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्त्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन-समुदाय में सुख-शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस-पास, तरह-तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे और चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर-घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दु:ख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है। "

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति-विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है–पतन, निराशा और दु:ख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर-पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर-साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया हैं, अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम हैं।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी, अत: आज भी कबीर साहित्य

की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थी। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान-पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र-मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा-सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण के अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से

प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन-साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख-आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे –

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्त्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन-समुदाय में सुख-शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रुप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस-पास, तरह-तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर-घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दु:ख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति-विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दूरव्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है—पतन, निराशा और दु:ख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर-पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर-साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है, अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रुप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्ममन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन

का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था। आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी, अतः आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरुरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभांवित हो सके।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ-चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कहीं-न-कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों-करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरुक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई॥

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान॥

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो इमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुःखी और असहनीय हो रहा है।

आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढ़ाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो॥
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रुप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने आवश्यक है। कबीर ने धार्मिक रुढ़ियों उपासना संबंधी मूढ़ मान्यताओं तथा मंदिर-मस्जिद विष्यक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरु भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन-संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख-शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा-पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुंदर इसी में नौ लख तारा।

गुरु के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दु:खों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरु भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो-चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को, प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वत: सुलझ जाती है।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम-रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही 'प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रुपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्में थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण-व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता

माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जो कि ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण-व्यवस्था के गढ़ में काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, "हरिजन सई न जाति'' भक्त से समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वह नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं –

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥ "

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइंडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रुढ़ियों अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण-विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान है।

"जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे॥
उत्पत्ति ब्यंद कहाँ थै आया, जोति धरि अरु लगी माया।
नहिं कोइ उँचा नहिं कोइ नीचे, जाका लंड तांही का सींचा॥
जो तू वामन वमनीं जाया, तो आन बाट हवे काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनीं जाया तो भीतरि खतना क्यूनें करवाया॥

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे- गदहा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ़ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि आभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा॥

राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढ़ता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा।।

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई।।

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति-पाति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा-दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के लोला ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढ़ै खेत।।

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रुढ़ियों में जकड़ लिया है तथा भाँति-भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई है। इस प्रकार एक क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ-छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल-तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि।।

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात वे ढ़ोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ता-चीनी और छान-बीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण-मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट।।

कबीर साहब जात-पात की तुलना में कर्म को श्रेष्ट मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जेकरणी उँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई।।

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़-झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्याधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चुना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं –

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय।।

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग का एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार कावा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम।।

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

2

कबीर का जीवन परिचय

कबीरदास जी कवि थे, इससे भी अधिक क्रांतिकारी, समाज सुधारक और ईश्वर भक्त थे। उन्होंने कविता जैसे माध्यम का प्रयोग, समाज सुधार के कार्य तथा समाज में फैले पाखण्ड तथा भ्रान्तियों को दूर करने के उद्देश्य से किया। कबीर जी ने कहीं से भी विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की थी।

कहते हैं कि, उन्हें अक्षर ज्ञान भी नहीं था, फिर भी उनकी कविता का भाव इतना सशक्त बन पड़ा, जिसके दृष्टिगत भाषा अथवा शैली का दोष अपदार्थ हो जाता है, यद्यपि कबीर जी पर कई विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा तो भी कबीर जी का अपना मौलिक दर्शन है। परिणामस्वरूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रतिष्ठित रचना गीतांजलि पर कबीर की रचना बीजक की गहरी छाप मिलती है।

कबीरदास जी के जीवन-वृतान्त के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। परन्तु कहते हैं कि–

"चौदह सो पचपन साल गये, चन्द्रवार इक ठाठ भये।
जेठ सुदी बरसाइत को, पूरनमासी प्रकट भये॥''

उनका जन्म संवत् 1456 के आस-पास हुआ था, वे एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से पैदा हुए थे। समाज के भय के कारण वह नवजात शिशु को एक नदी के किनारे छोड़ गई। नीरू और नीमा नामक जुलाहा मुस्लिम दम्पति ने शिशु को उठा लिया और उसका लालन-पालन किया, वे निर्धन थे।

वे कबीर जी की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध न कर सके, अत: जैसे ही कबीर जी बड़े हुए, उन्हें कपड़ा बुनने का कार्य सिखाया। इस कार्य को वे जावन पर्यन्त करते रहे और किसी पर आश्रित नहीं रहे।

'कबीरदास' का जन्म सन् 1398 ई0 में काशी में हुआ था। कबीर के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। इनके जन्म के विषय में यह प्रचलित है कि इनका जन्म स्वामी रामानन्द के आशीर्वाद से एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जो लोक-लाज के दर से इन्हें 'लहरतारा' नामक तालाब के पास फेंक आई। संयोगवश नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति को ये मिले और उन्होंने इनका पालन-पोषण किया।

कबीर की शिक्षा-दीक्षा का अच्छा प्रबंध न हो सका। ये अनपढ़ ही रहे। इनका काम कपड़े बुनना था। ये जुलाहे का काम करते थे, परन्तु साथ ही साथ साधु संगति और ईश्वर के भजन चिंतन में भी लगे रहते थे। इनका विवाह 'लोई' नामक स्त्री से हुआ था। इनके 'कमाल' नामक एक पुत्र और 'कमाली' नामक एक पुत्री थी।

कबीरदास ने अपना सारा जीवन ज्ञान देशाटन और साधु संगति से प्राप्त किया। ये पढ़े-लिखे नहीं थे, परन्तु दूर-दूर के प्रदेशों की यात्रा कर साधु-संतों की संगति में बैठकर सम्पूर्ण धर्मों तथा समाज का गहरा अध्ययन किया। अपने इस अनुभव को इन्होने मौखिक रूप से कविता में लोगों को सुनाया।

कबीरदास का जन्म ऐसे समय में हुआ था, जब कि हमारे देश में चारों तरफ अशांति और अव्यवस्था का बोलबाला था। विदेशी आक्रमणों से देश की जनता पस्त थी। अनेक धर्म और मत-मतान्तर समाज में प्रचलित थे। आर्थिक दशा बड़ी दयनीय थी। ऐसे कठिन समय में जन्म लेकर इस युग दृष्टा महान संत ने देश की जनता को एक नया ज्ञान का ज्योतिर्मय मार्ग दिखाया।

कबीरदास निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उनका मत था कि ईश्वर समस्त संसार में व्याप्त है। उन्होंने ब्रह्म के लिए राम, हरि आदि शब्दों का प्रयोग किया, परन्तु वे सब ब्रह्म के ही पर्यायवाची हैं। उनका मार्ग ज्ञान मार्ग था। इसमें गुरु का महत्त्व सर्वोपरि है। कबीर स्वच्छंद विचारक थे, उन्होंने समाज में व्याप्त समस्त रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध किया।

कबीरदास की मृत्यु स्थान के विषय में भी लोगों में मतभेद है। भिन्न-भिन्न लोग पुरी, मगहर और रतनपुर (अवध) में इनकी मृत्यु हुई मानते

हैं, परन्तु अधिकाँश विद्वान मगहर को ही इनका मृत्यु स्थान मानने के पक्ष में हैं। इनकी मृत्यु सन् 1495 ई. के लगभग मानी जाती है।

कबीदास की रचनाओं को उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र तथा शिष्यों ने 'बीजक' के नाम से संग्रहीत किया। इस बीजक के तीन भाग हैं--(1) सबद (2) साखी (3) रमैनी। बाद में इनकी रचनाओं को 'कबीर ग्रंथावली' के नाम से संग्रहीत किया गया। कबीर की भाषा में ब्रज, अवधी, पंजाबी, राजस्थानी और अरबी फारसी के शब्दों का मेल देखा जा सकता है। उनकी शैली उपदेशात्मक शैली है।

कबीर हिंदी साहित्य के महिमामण्डित व्यक्तित्त्व हैं। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता का निरंतर प्रयास किया। हिंदी साहित्य जगत में उनका विशिष्ट स्थान है। अशिक्षित होते हुए भी उन्होंने जनता पर जितना गहरा प्रभाव डाला है, उतना बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं डाल सके हैं। वे सच्चे अर्थों में समाज सुधारक थे।

कबीर स्वयं अपनी शिक्षा के बारे में कहते हैं–

'मसि कागज छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

कबीरदास जी को ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हुई तो वे गुरू की खोज करने लगे। उन दिनों काशी के स्वामी रामानन्द की प्रसिद्धि चारों ओर फैली हुई थी। कबीरदास जी उनके पास गए और उनसे गुरू बनकर ज्ञान देने की प्रार्थना की। स्वामी रामानन्द ने उन्हें शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया। कबीरदास अपनी धुन के पक्के थे। उन्हें पता था कि, स्वामीजी नित्य गंगा स्नान के लिए जाते हैं।

एक दिन उसी मार्ग पर वे गंगाघाट की सीढ़ियों पर लेट गए। प्रातः जब हमेशा की तरह स्वामी रामानन्द जी गंगा स्नान के लिए गए तो उनका पैर कबीरदास की छाती पर पड़ गया। उनके मुख से अकस्मात् निकला ' राम राम ' कहो भाई। कबीरदास जी की दीक्षा हो गई और यही वाक्य उनका गुरूमंत्र बन गया। वे जीवन भर राम की उपासना करते रहे।

कबीरदास जी को इसी राम नाम की उपासना से ही ज्ञान हो गया। ईश्वर से साक्षात्कार हुआ और सत्य का पता चला। इस समय हिन्दू तथा मुसलमान दो धर्म मुख्य रूप से प्रचलित थे, दोनों धर्मों को रूढ़ियों ने जकड़ रखा था। हिन्दू जाति-पांति और छुआछूत के अतिरिक्त मूर्तिपूजा, तीर्थों तथा अवतारवाद को मानते थे। मुसलमानों में रोजा और बाग का चलन था। कबीरदास जी ने निर्भीक होकर समाज तथा दोनों धर्मों में व्याप्त रूढ़ियों पर प्रहार किये।

हिन्दुओं की मूर्ति पूजा की रीति पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा–

" पाथर पूजै हरि मिलें, हम लें पूजि पहार।
घर की चाकी कोई न पूजै, पिस खाय ये संसार।।"

कबीरदास के व्यंग्य की परिधि से मुसलमान भी न बच सके–

'काँकर-पाथर जोरि के, मस्जिद लई चिणाय।
जा चढ़ी मुल्ला बाँग दे, का बहरा हुआ खुदाय।।'

कबीर ईश्वर भक्ति तथा शुद्ध मन से कर्म करने में विश्वास करते थे। उनकी दृष्टि में प्रेम तथा मानवता द्वारा ही ईश्वर प्राप्ति संभव है, कोरे किताबी ज्ञान से नहीं।

इसलिये उन्होंने कहा है–

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोए
ढ़ाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होए।।

कबीरदास जी की रचनाएँ सखी, सबद और रमैनी बीजक में संग्रहीत है। कबीर जी का भाषा में खड़ी बोली के अतिरिक्त पंजाबी, गुजराती, राजस्थाना ब्रज तथा अवधि के शब्द मिलते हैं। कबीरदास जी जीवन पर्यन्त समाज सुधार के काम में लगे रहे। संत कबीरदास हिंदी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि हैं, जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। वह कर्म प्रधान समाज के पैरोकार थे और इसकी झलक उनकी रचनाओं में साफ झलकती है। लोक कल्याण हेतु ही मानो उनका समस्त जीवन था। कबीर को वास्तव में एक सच्चे विश्व -प्रेमी का अनुभव था। कबीर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी प्रतिभा में अबाध गति और अदम्य प्रखरता थी। समाज में कबीर को जागरण युग का अग्रदूत कहा जाता है।

जन्म

कबीरदास के जन्म के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुई। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगा स्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल

'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

हम कासी में प्रकट भये हैं,
रामानन्द चेताये।

कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए

जन्मस्थान

कबीर के जन्मस्थान के संबंध में तीन मत हैं–मगहर, काशी और आजमगढ़ में बेलहरा गाँव।

मगहर के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि कबीर ने अपनी रचना में वहाँ का उल्लेख किया है–पहिले दरसन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई अर्थात् काशी में रहने से पहले उन्होंने मगहर देखा। मगहर आजकल वाराणसी के निकट ही है और वहाँ कबीर का मकबरा भी है।

कबीर का अधिकांश जीवन काशी में व्यतीत हुआ। वे काशी के जुलाहे के रूप में ही जाने जाते हैं। कई बार कबीरपंथियों का भी यही विश्वास है कि कबीर का जन्म काशी में हुआ, किंतु किसी प्रमाण के अभाव में निश्चयात्मकता अवश्य भंग होती है। बहुत से लोग आजमगढ़ जिले के बेलहरा गाँव को कबीर साहब का जन्म स्थान मानते हैं।

वे कहते हैं कि 'बेलहरा' ही बदलते-बदलते लहरतारा हो गया। फिर भी पता लगाने पर न तो बेलहरा गाँव का ठीक पता चला पाता है और न यही मालूम हो पाता है कि बेलहरा का लहरतारा कैसे बन गया और वह आजमगढ़ जिले से काशी के पास कैसे आ गया ? वैसे आजमगढ़ जिले में कबीर, उनके पंथ या अनुयायियों का कोई स्मारक नहीं है।

माता-पिता

कबीर के माता-पिता के विषय में भी एक राय निश्चित नहीं है। 'नीमा' और 'नीरु' की कोख से यह अनुपम ज्योति पैदा हुई थी, या लहर तालाब के

समीप विधवा ब्राह्मणी की पाप-संतान के रुप में आकर यह पतितपावन हुए थे, ठीक तरह से कहा नहीं जा सकता है। कई मत यह है कि नीमा और नीरु ने केवल इनका पालन-पोषण ही किया था। एक किवदंती के अनुसार कबीर को एक विधवा ब्राह्मणी का पुत्र बताया जाता है, जिसको भूल से रामानंद जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया था।

एक जगह कबीर ने कहा है –

'जाति जुलाहा नाम कबीरा
बनि बनि फिरो उदासी।'

कबीर के एक पद से प्रतीत होता है कि वे अपनी माता की मृत्यु से बहुत दु:खी हुए थे। उनके पिता ने उनको बहुत सुख दिया था। वह एक जगह कहते हैं कि उसके पिता बहुत 'गुसाई' थे। ग्रंथ साहब के एक पद से विदित होता है कि कबीर अपने वयनकार्य की उपेक्षा करके हरिनाम के रस में ही लीन रहते थे। उनकी माता को नित्य कोश घड़ा लेकर लीपना पड़ता था। जबसे कबीर ने माला ली थी, उसकी माता को कभी सुख नहीं मिला। इस कारण वह बहुत खीज गई थी। इससे यह बात सामने आती है कि उनकी भक्ति एवं संत-संस्कार के कारण उनकी माता को कष्ट था।

बचपन

कबीरदास का लालन-पालन जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए उनके मत का महत्त्वपूर्ण अंश यदि इस जाति के परंपरागत विश्वासों से प्रभावित रहा हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यद्यपि 'जुलाहा' शब्द फारसी भाषा का है, तथापि इस जाति की उत्पत्ति के विषय में संस्कृत पुराणों में कुछ-न-कुछ चर्चा मिलती ही है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्म खंड के दसवें अध्याय में बताया गया है कि म्लेच्छ से कुविंदकन्या में 'जोला' या जुलाहा जाति की उत्पत्ति हुई है। अर्थात् म्लेच्छ पिता और कुविंद माता से जो संतति हुई, वही जुलाहा कहलाई।

जुलाहा

जुलाहे मुसलमान है, पर इनसे अन्य मुसलमानों का मौलिक भेद है। सन् 1901 की मनुष्य-गणना के आधार पर रिजली साहब ने 'पीपुल्स ऑफ इंडिया' नामक एक ग्रंथ लिखा था। इस ग्रंथ में उन्होंने तीन मुसलमान जातियों की तुलना

की थी। वे तीन हैं– सैयद, पठान और जुलाहे। इनमें पठान तो भारतवर्ष में सर्वत्र फैले हुए हैं, पर उनकी संख्या कहीं भी बहुत अधिक नहीं है। जान पड़ता है कि बाहर से आकर वे नाना स्थानों पर अपनी सुविधा के अनुसार बस गए, पर जुलाहे पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में ही पाए जाते हैं। जिन दिनों कबीरदास इस इस जुलाहा–जाति को अलंकृत कर रहे थे, उन दिनों, ऐसा जान पड़ता है कि इस जाति ने अभी एकाध पुश्त से ही मुसलमानी धर्म ग्रहण किया था। कबीरदास की वाणी को समझने के लिए यह निहायत जरूरी है कि हम इस बात की जानकारी प्राप्त कर ले कि उन दिनों इस जाति के बचे–कुचे पुराने संस्कार क्या थे।

उत्तर भारत के वयनजीवियों में कोरी मुख्य हैं। बेन्स जुलाहों को कोरियों की समशील जाति ही मानते हैं। कुछेक पंडितों ने यह भी अनुमान किया है कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करने वाले कोरी ही जुलाहे हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि कबीरदास जहाँ अपने को बार–बार जुलाहा कहते हैं,

(1) जाति जुलाहा मति कौ धीर। हरषि गुन रमै कबीर।

(2) तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।

वहाँ कभी–कभी अपने को कोरी भी कह गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यद्यपि कबीरदास के युग में जुलाहों ने मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया था, पर साधारण जनता में तब भी कोरी नाम से परिचित थे।

सबसे पहले लगने वाली बात यह है कि कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, पर मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे बराबर अपने को 'ना–मुसलमान' कहते रहे। आध्यात्मिक पक्ष में निस्संदेह यह बहुत ऊँचा भाव है, पर कबीरदास ने कुछ इस ढ़ंग से अपने को उभय–विशेष बताया है कि कभी–कभी यह संदेह होता है कि वे आध्यात्मिक सत्य के अतिरिक्त एक सामाजिक तथ्य की ओर भी इशारा कर रहे हैं। उन दिनों वयनजीवी नाथ–मतावलंबी गृहस्थ योगियों की जाति सचमुच ही 'ना–हिंदू ना–मुसलमान' थी। कबीरदास ने कम–से–कम एक पद में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि हिंदू और हैं, मुसलमान और हैं और योगी और हैं, क्योंकि योगी या जोगी 'गोरख–गोरख करता है, हिंदू 'राम–राम' उच्चारता है और मुसलमान 'खुदा–खुदा' कहा करता है।

शिक्षा

कबीरदास

कबीर बड़े होने लगे, कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-अपनी अवस्था के बालकों से एकदम भिन्न रहते थे। कबीरदास की खेल में कोई रुचि नहीं थी। मदरसे भेजने लायक साधन माता-पिता के पास नहीं थे। जिसे हर दिन भोजन के लिए ही चिंता रहती हो, उस पिता के मन में कबीर को पढ़ाने का विचार भी न उठा होगा। यही कारण है कि वे किताबी विद्या प्राप्त न कर सके।

मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया।

वैवाहिक जीवन

कबीर का विवाह वनखेड़ी बैरागी की पालिता कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतान भी थी। ग्रंथ साहब के एक 'लोक से विदित होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था।

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोड़ि के, घर ले आया माल।

कबीर की पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात -दिन मुडियों का जमघट रहने से बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं –

सुनि अंघली लोई बंपीर।
इन मुड़ियन भजि सरन कबीर॥

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल-ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। लोई शब्द का प्रयोग कबीर ने एक जगह कंबल के रुप में भी किया है। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं –

कहत कबीर सुनहु रे लोई।
हरि बिन राखन हार न कोई॥ '

यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है –

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार।
जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार॥

गुरु दीक्षा

कबीर जी ने सोचा कि गुरु किये बिना काम बनेगा नहीं। उस समय काशी में रामानन्द नाम के संत बड़े उच्च कोटि के महापुरुष माने जाते थे। कबीर जी ने उनके आश्रम के मुख्य द्वार पर आकर विनती की: 'मुझे गुरुजी के दर्शन कराओ। ' उस समय जात-पाँत का बड़ा आग्रह रहता था और फिर काशी ! वहाँ पण्डितों और पाण्डे लोगों का अधिक प्रभाव था। कबीर जी ने देखा कि हर रोज सुबह तीन-चार बजे स्वामी रामानन्द खड़ाऊँ पहनकर 'टप...टप....' आवाज करते गंगा में स्नान करने जाते हैं। कबीर जी ने गंगा के घाट पर उनके जाने के रास्ते में और सब जगह बाड़ कर दी। एक ही मार्ग रखा और उस मार्ग में सुबह के अन्धेरे में कबीर जी सो गये। गुरु महाराज आये तो अन्धेरे के कारण कबीर जी पर पैर पड़ गया। उनके मुख से उदगार निकल पड़े: 'राम... राम... राम....। ' कबीर जी का तो काम बन गया। गुरुजी के दर्शन भी हो गये, उनकी पादुकाओं का स्पर्श भी मिल गया और गुरुमुख से राम नाम का मंत्र भी मिल गया। अब दीक्षा में बाकी ही क्या रहा ? कबीर जी नाचते, गाते, गुनगुनाते घर वापस आये। राम नाम की और गुरुदेव के नाम की रट लगा दी। अत्यंत स्नेहपूर्वक हृदय से गुरुमंत्र का जप करते, गुरुनाम का कीर्तन करते साधना करने लगे, जो महापुरुष जहाँ पहुँचे हैं वहाँ की अनुभूति उनका भावपूर्ण हृदय से चिन्तन करने वाले को भी होने लगती है। काशी के पण्डितों ने देखा कि यवन का पुत्र कबीर राम नाम जपता है, रामानन्द के नाम का कीर्तन करता है ! उस यवन को रामनाम की दीक्षा किसने दी ? क्यों दी ? मंत्र को भ्रष्ट कर दिया ! पण्डितों ने कबीर से पूछा–

'रामनाम की दीक्षा तेरे को किसने दी ?'
-स्वामी रामानन्दजी महाराज के श्रीमुख से मिली।'

'कहाँ दी ?'

'सुबह गंगा के घाट पर। '

पण्डित रामानन्द जी के पास पहुँचे और कहा कि आपने यवन को राम मंत्र की दीक्षा देकर मंत्र को भ्रष्ट कर दिया, सम्प्रदाय को भ्रष्ट कर दिया। गुरु महाराज! यह आपने क्या किया ?

गुरु महाराज ने कहा-'मैंने तो किसी को दीक्षा नहीं दी। '

'वह यवन जुलाहा तो रामानन्द..... रामानन्द.... मेरे गुरुदेव रामानन्द' की रट लगाकर नाचता है, आपका नाम बदनाम करता है। '

'भाई! मैंने उसको कुछ नहीं कहा। उसको बुलाकर पूछा जाय, पता चल जायेगा। '

काशी के पण्डित इकट्ठे हो गये। कबीर जी को बुलाया गया। गुरु महाराज मंच पर विराजमान हैं। सामने विद्वान् पण्डितों की सभा बैठी है।

रामानन्दजी ने कबीर से पूछा: 'मैंने तुझे कब दीक्षा दी ? मैं कब तेरा गुरु बना ?'

कबीर जी बोले: 'महाराज ! उस दिन प्रभात को आपने मेरे को पादुका का स्पर्श कराया और राम मंत्र भी दिया, वहाँ गंगा के घाट पर।

रामानन्द जी कुपित से हो गये। कबीर जी को अपने सामने बुलाया और गरज कर बोले: 'मेरे सामने तू झूठ बोल रहा है ? सच बोल....'

'प्रभु ! आपने ही मुझे प्यारा रामनाम का मंत्र दिया था। ...'

कबीरदास की मजार और समाधि, मगहर, उत्तर प्रदेश

रामानन्दजी को गुस्सा आ गया। खड़ाऊँ उठाकर दे मारी कबीर जी के सिर पर।

'राम... राम...राम....! इतना झूठ बोलता है। ...'

कबीर जी बोल उठे: 'गुरु महाराज ! तबकी दीक्षा झूठी तो अबकी तो सच्ची...! मुख से राम नाम का मंत्र भी मिल गया और सिर में आपकी पावन पादुका का स्पर्श भी हो गया। '

स्वामी रामानन्द जी उच्च कोटि के संत-महात्मा थे। घड़ी भर भीतर गोता लगाया, शांत हो गये, फिर पण्डितों से कहा: 'चलो, यवन हो या कुछ भी हो, मेरा पहले नम्बर का शिष्य यही है। '

ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुषों की विद्या या दीक्षा प्रसाद खाकर मिले तो भी बेड़ा पार करती है और मार खाकर मिले तो भी बेड़ा पार कर देती है।

मृत्यु

कबीर ने काशी के पास मगहर में देह त्याग दी। ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के बाद उनके शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से। इसी विवाद के चलते जब उनके शव पर से चादर हट गई, तब लोगों ने वहाँ फूलों का ढ़ेर पड़ा देखा। बाद में वहाँ से आधे फूल हिन्दुओं ने ले लिए और आधे मुसलमानों ने। मुसलमानों ने मुस्लिम रीति से और हिंदुओं ने हिंदू रीति से उन फूलों का अंतिम संस्कार किया। मगहर में कबीर की समाधि है। जन्म की भाँति इनकी मृत्यु तिथि एवं घटना को लेकर भी मतभेद हैं, किन्तु अधिकतर विद्वान् उनकी मृत्यु संवत 1575 विक्रमी (सन 1518 ई.) मानते हैं, लेकिन बाद के कुछ इतिहासकार उनकी मृत्यु 1448 को मानते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

त्रिपुरा जिले के योगियों को पहले अग्निदाह करते हैं और फिर समाधि भी देते हैं अर्थात् मिट्टी में गाड़ भी देते हैं। कबीरदास के विषय में प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बच रहे थे, जिनमें से आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने गाड़ दिया। कई पंडितों ने इस को करामाती किंवदती कहकर उड़ा दिया है, पर मेरा अनुमान है कि सचमुच ही कबीरदास को (त्रिपुरा जिले के वर्तमान योगियों की भाँति) समाधि भी दी गई होगी और उनका अग्नि-संस्कार भी किया गया होगा। यदि यह अनुमान सत्य है तो दृढ़ता के साथ ही कहा जा सकता है कि कबीरदास जिस जुलाहा जाति में पालित हुए थे, वह एकाध पुश्त पहले के योगी जैसी किसी आश्रम-भ्रष्ट जाति से मुसलमान हुई थी या अभी होने की राह में थी। जोगी जाति का संबंध नाथपंथी सिद्धांतों की जानकारी न हो तो कबीर की वाणियों को समझ सकना भी मुश्किल है।

कबीर का जीवन दर्शन

कबीर परमात्मा को मित्र, माता, पिता और पति के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं-

हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया। तो कभी कहते हैं-

हरि जननी मैं बालक तोरा। उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढ़ंग से सुनियोजित किया,

जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी, ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका आदर होता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

जो लोग हिन्दू-मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित हैं, वे भी कबीरदास को अपना मार्गदर्शक मानते हैं। यह उचित भी है। राम-रहीम और केशव-करीम की जो एकता स्वयं सिद्ध है, उसे भी सम्प्रदाय बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते। कबीरदास से अधिक जोरदार शब्दों में एकता का प्रतिपादन किसी ने भी नहीं किया है, पर जो लोग उत्साहधिक्यवश कबीर को केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता का पैगम्बर मान लेते हैं, वे उनके मूल स्वरूप को भूलकर उसके एक देशमात्र की बात करने लगते हैं। ऐसे लोग यदि यह देखकर क्षुब्ध हों कि कबीरदास ने दोनों धर्मों की ऊँची संस्कृति या 'दोनों धर्मों के उच्चतर भावों में सामंजस्य स्थापित करने की कहीं पर कोशिश नहीं की और सिर्फ यही नहीं, बल्कि उन सभी धर्मगत विशेषताओं की खिल्ली ही उड़ाई है जिसे मजहबी नेता बहुत श्रेष्ठ धर्माचार कहकर व्याख्या करते हैं, 'तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि कबीरदास इस बिन्दु से धार्मिक द्वन्द्वों को देखते ही न थे। उन्होंने रोग का ठीक निदान किया या नहीं, इसमें दो मत हो सकते हैं, पर औषध निर्वाचन में और अपथ्य वर्जन के निर्देश में उन्होंने बिल्कुल गलती नहीं की। यह औषध है भगवद्विश्वास। दोनों धर्म समान रूप से भगवान में विश्वास करते हैं और यदि सचमुच ही आदमी धार्मिक है तो इस अमोघ औषध का प्रभाव उस पर पड़ेगा ही। अपथ्य है बाह्य आचारों को धर्म समझना, व्यर्थ कुलाभिमान, अकारण ऊँच-नीच का भाव। कबीरदास की इन दोनों व्यवस्थाओं में गलती नहीं है और अगर किसी दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता हुई तो इसी रास्ते हो सकती है। इसमें केवल बाह्याचारवर्जन की नकारात्मक प्रक्रिया नहीं है, भगवद्विश्वस का अविश्लेष्य सीमेंट भी कार्य करेगा।

इसी अर्थ में कबीरदास हिन्दू और मुसलमानों के ऐक्य-विधायक थे। परन्तु जैसा की आरम्भ में ही कहा गया है, कबीरदास को केवल इन्हीं रूपों में देखना सही नहीं है। वे मूलतः भक्त थे। भगवान पर उनका अविचल अखंड विश्वास था। वे कभी सुधार करने के फेर में नहीं पड़े। शायद वे अनुभव कर चुके थे कि जो स्वयं सुधरना ही नहीं चाहता, उसे जबरदस्ती सुधारने का व्रत व्यर्थ का प्रयास ही है। वे अपने उपदेश साधु भाई को देते थे या फिर स्वयं अपने आपको ही सम्बोधित करके कह देते थे। यदि उनकी बात कोई सुनने वाला न मिले तो वे निश्चित होकर स्वयं को ही पुकार कर कह उठते: 'अपनी राह तू चले कबीरा!' अपनी राह अर्थात् धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल और शास्त्र की रूढ़ियों से, जो बद्ध नहीं है, जो अपने अनुभव के द्वारा प्रत्यक्षीकृत है।

कबीर की महिमा

जो लोग इन बातों से ही कबीरदास की महिमा का विचार करते हैं, वे केवल सतह पर ही चक्कर काटते हैं। कबीरदास एक जबरदस्त क्रान्तिकारी पुरुष थे। उनके कथन की ज्योति, जो इतने क्षेत्रों को उदभासित कर सकी है सो मामूली शक्तिमत्ता की परिचायिका नहीं है। परन्तु यह समझना कि उदभासित पदार्थ ही ज्योति है, बड़ी भारी गलती है। उदभासित पदार्थ ज्योति की ओर इशारा करते हैं और ज्योति किधर और कहाँ पर है, इस बात का निर्देश देते हैं। ऊपर-ऊपर, सतह पर चक्कर काटने वाले समुद्र भले ही पार कर जाएँ, पर उसकी गहराई की थाह नहीं पा सकते। इन पंक्तियों का लेखक अपने को सतह का चक्कर काटने वालों से विशेष नहीं समझता। उसका दृढ़ विश्वास है कि कबीरदास के पदों में जो महान् प्रकाशपुंज है, वह बौद्धिक आलोचना का विषय नहीं है। वह संग्रहालय की चीज नहीं है, बल्कि जीवित प्राणवान वस्तु है। कबीर पर पुस्तकें बहुत लिखी गई हैं, और भी लिखी जाएँगी, पर ऐसे लोग कम ही हैं, जो उस साधना कि गहराई तक जाने की चेष्टा करते हों। राम की वानरी सेना समुद्र जरूर लाँघ गई थी, पर उसकी गहराई का पता तो मंदर पर्वत को ही था, जिसका विराट शरीर आपाताल-निमग्न हो गया था:

अब्धिर्लंघित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गंभीरताम
आपाताल–निमग्न–पीवरतनुर्जानाति मंद्राचलः।

कबीरदास की सच्ची महिमा तो कोई गहरे में गोता लगाने वाला ही समझ सकता है। कबीरदास ने स्वयं अरूप को रूप देने की चेष्टा की थी, परन्तु

वह स्वयं कह गए हैं कि ये सारे प्रयास तभी तक थे, जब तक की परम प्रेम के आधार प्रियतम का मिलन नहीं हुआ था। साखी, पद, शब्द और दोहरे उसी प्राप्ति के साधन हैं, मार्ग हैं। गंतव्य तक पहुँच जाने पर मार्ग का हिसाब करना बेकार होता है। फिर इन साखी, शब्द और दोहरों की व्याख्या के प्रयास को क्या कहा जाए? ये तो साधन को समझाने के साधन-साधन के भी साधन हैं।

कवीर का चरित्र-चित्रण। कबीर की कुछ चारित्रिक विशेषता

रामानंद के शिष्य परंपरा में आने वाले संतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कबीरदास हैं। कबीर चरित्र बोध भक्तिकाल और कबीर परिच के आधार पर कहा जाता है कि कबीर का जन्म सन् 1398 ईस्वी में हुआ और मृत्यु सन 1518 ईस्वी में हुई। इस प्रकार से 120 वर्ष तक जीवित रहे। उस समय लोधी वंश का दमन पूर्ण शासन चल रहा था। जिससे जनता में डर और भय का आतंक था।

इतिहासकार कबीर और सिकंदर लोदी को समकालीन मानते हैं। सिकंदर लोधी ने सन् 1489 ईस्वी से सन् 1517 ईस्वी तक दिल्ली पर शासन किया था। उनके दो पदों से ज्ञात होता है कि सिकंदर लोदी ने कबीर के हाथ बांधकर उन्हें हाथी के सामने डाल दिया था, किंतु हाथी चिंघाड़ता हुआ भाग गया। इसी प्रकार उन्हें जंजीर से बांध कर गंगा में डाल दिया गया, किंतु गंगा की लहरों से जंजीर टूट गई।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा

का इस संबंध में अनुमान है कि सिकंदर लोदी के अत्याचारों से ही उनकी मृत्यु हुई होगी, मगहर जाने पर भी कबीर उसकी क्रूर दृष्टि से बच नहीं पाए होंगे।

जॉन ब्रिन्स

के अनुसार सिकंदर लोदी का पूर्वी क्षेत्रों पर आक्रमण 1494 ईस्वी में हुआ था। उस समय उनकी मृत्यु मानने से उनकी उम्र 96 वर्ष निश्चित होती है, जो ऐतिहासिक समय नहीं है वस्तुतः इस समय सिकंदर लोधी ने कबीर पर उक्त अत्याचार किए होंगे।

एक और जनश्रुति के आधार पर यह माना जाता है कि वह जनता में फैले इस अंधविश्वास को मगहर में मरने वाला नरक वास होता है और काशी में मरने

वाले को स्वर्गवास, यह अंधविश्वास दूर करने के लिए वह जीवन के अंतिम क्षणों में मगहर गए।

अनेक विद्वानों ने कबीर का जन्म विधवा ब्राह्मणी के गर्व से हुआ मानते हैं। लोक-लाज के भय से उसने उन्हें काशी के लहरतारा तालाब के किनारे फेंक दिया था। उधर से जाते हुए नीरू और नीमा नि:संतान जुलाहा दंपति ने उन्हें उठा लिया और उसका पुत्र वत पालन पोषण किया। जिस जुलाहा जाति में इनका पालन पोषण हुआ वह कुछ समय पहले ही सामूहिक रुप से मुसलमान हो गए थे, किंतु अभी तक उनमें हिंदू संस्कार अवशिष्ट थे।

डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी

के अनुसार यह जुलाहा जाति नाथपंथी योगियों की शिष्य थी और इसमें अनेक विश्वास और संस्कार पूरी मात्रा में विद्यमान थे, मुसलमान यह नाम मात्र के ही थे।

आगे चलकर कबीर रामानंद के शिष्य हो गए।

कबीर की कुछ चारित्रिक विशेषता निम्नलिखित है

1. आदर्श पुत्र व पति कवि

कबीर पहले एक आदर्श पुत्र हैं, जो अपनी माता को बहुत स्नेह करते हैं। उन को यह बात भी पता थी कि वह किसी और के गर्भ से जन्म लिया है, किंतु उसके स्नेह-वात्सल्य ता मातृत्व में कोई कमी नहीं आई। वह अपने माता पिता को सगे बेटे से अधिक प्रेम करते हैं। उनके माता पिता नूरा और नीमा दोनों भी कबीर से उतना ही स्नेह रखते हैं, जितना कि कबीर कुछ स्वभाव से नूरा कबीर से नाराज होते हैं, उसे डांटते है, किंतु उसके डांट में भी एक प्रेम की धारा ही प्रवाहित होती है, किंतु उसकी मां नीमा कबीर पर कभी क्रोध नहीं करती।

बल्कि वह कभी-कभी नूरा के स्वभाव से नाराज भी हो जाती है, वस्तुत: वह एक आदर्श पुत्र है, इतना ही नहीं वह एक अच्छा हुआ आदर्श पति भी है। वह अपनी पत्नी 'लोई 'से भी स्नेह रखते है, कबीर उस से इतना प्रेम करते हैं कि वह उसको शादी के उपरांत कोई उसके प्रेमी के पास खुद छोड़ कर आते है, किंतु लोई का हृदय परिवर्तन होने के कारण वापस उन के पास लौट आती है, अत: कबीर अपनी पत्नी को कोई बंधन में नहीं बांधना चाहते। वह स्वतंत्र रह सकती है।

अत: कबीर यह भी एक आदर्श पति के रुप में प्रस्तुत होते हैं।

2. संत

भारतीय साहित्य में संत शब्द अनेकों बार आया है। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने संत को सज्जन के रूप में प्रयोग किया है। आगे चलकर निर्गुण कवियों को संत कहा गया है। कबीरदास रामानंद के शिष्य कहलाए, उन्होंने रामानंद को अपना काव्य गुरु माना–

"काशी में हम प्रगट भए हैं रामानंद चेताए"

किंतु रामानंद ने राम भक्ति का सूत्रपात किया। उन्होंने राम को सगुण रूप में उपासना किया, किंतु कबीरदास ने राम का निर्गुण रूप में उपासना की। उन के राम अयोध्या का राम नहीं, बल्कि निर्गुण निराकार है।

"निर्गुण राम जपो रे भाई"

उन्होंने निर्गुण रूप की उपासना की और मायावाद व अद्वैतवाद का विरोध किया, उन्होंने सभी लोगों को समाज को आडंबरों कर्मकांडों का विरोध तथ्यों के आधार पर किया।

3. विचार दार्शनिक अथवा कवि

कबीर दास पहले कवि हैं, फिर समाज सुधारक। उन्होंने अपनी रचना को समाज में फैली कुरीतियों व आडंबरों को आधार प्रदान किया। उनके काव्य में कोई न कोई उद्देश्य अवश्य छिपा रहता है। उन का ऐसे समय में आगमन हुआ, जब देश में क्रूर आताताईयों मुसलमान शासकों का साम्राज्य था। धर्म संकट ग्रस्त था। यहां तक की स्त्रियों की भी दशा दयनीय थी। उनका सम्मान सुरक्षित नहीं था। लोगों का जबरन बलात धर्म परिवर्तन कराया जा रहा था। दास प्रथा भी समाज में विद्यमान थी, जो समाज में कोढ़ का काम कर रही थी।

मानवीय संवेदना लुप्त हो चुकी थी। ऐसे में कबीर का दार्शनिक विचार और कवि रूप में अधिक प्रबल हुआ, उन्होंने समाज में लेने का विश्वास अंधविश्वास कुरीतियों आदि का विरोध किया। उन्होंने वह मनुष्य की स्थापना के लिए अधिक प्रयास किया, उन्होंने प्रेम की प्रधानता को स्वीकार्य किया।

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय"

कबीर ने समाज में विराजमान स्थिति का अध्ययन कर लोगों को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। उस समय लोग अपनी भोग विलास व अन्य

जरूरत की सामान में ही डूबे रहते थे। वह कहीं भी शांति ना प्राप्त कर पाते थे। शांति के लिए जंगल में तपस्या मंदिरों में पूजा व अनेक प्रकार के कर्मकांडों को अंजाम दिया करते थे, किंतु आत्मशांति उन्हें कहीं भी प्राप्त नहीं होती थी। उन्होंने लोगों की स्थिति ठीक उसी प्रकार माना है जैसे कि हिरण की होती है। उसके नाभि में कस्तूरी विराजमान होती है, मगर वह इसकी तलाश में जंगल जंगल भटका करती है

"कस्तूरी कुंडली अमृत बसे मृग फिरे वन माहि
ऐसे घट-घट राम है दुनिया जानत नाही"

कबीरदास का दार्शनिक विचार समाज को यथार्थ का साक्षात्कार करवाता है। वह ईश्वर का, सकल जगत, चर-अचर सभी में व्याप्त माने जाते हैं।

"जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ, जल -जलही समाया इहै तथ्य कथ्यो ज्ञानी।"

उनका स्पष्ट मत था कि मनुष्य एक घड़ा की भांति है, जिसके बाहर भीतर पानी भरा है और घड़ा के फूट जाने अर्थात मृत्यु के उपरांत उस निर्गुण निराकार परमात्मा में विलीन हो जाना ही अंतिम सत्य है।

पता है कबीर के चरित्र की यह विशेषता प्रमुख है, उन्होंने अपने दार्शनिक विचार का लोहा मनवाया और एक सजग समाजसेवी के रूप में जीवन पर्यंत कार्य करते रहे।

4. समाज सुधारक

कबीर का जन्म ऐसे काल में हुआ जब सामंतवाद का उत्कर्ष काल था। समाज में व्याप्त धर्म अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने के लिए अनेक प्रकार के कर्मकांड को अपना रही थी। जिसका मकसद केवल धर्म की आड़ में अपना भोग-विलास करना था, और कुछ नहीं इस कर्मकांड अंधविश्वास कुरीतियों में केवल आम व्यक्ति ही पिस्ता था, केवल उसकी भावनाओं विश्वासों के साथ ही खिलवाड़ किया जाता था अत: समाज में अनेक प्रकार की बुराइयों ने जाति-पाति ने अपनी जड़े जमा ली। वर्ण व्यवस्था ने समाज को कई भागों में विभाजित कर दिया।

ब्राह्मण अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए यह वर्ण व्यवस्था को प्रचार करते जिसके अनुसार ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और शूद्र का पुत्र सुद्रर ही कहलाता था। ब्राह्मण चाहे कितना ही नीचे अनीति कार्य करें, तब भी वह श्रेष्ठ होता था, और

शुद्र चाहे कितना ही श्रेष्ठकर कार्य करे वह शूद्र ही कहलाता था, अतः कबीर ने इस जात-पात का विरोध किया।

जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।

उन्होंने जात से उच्च कार्य व ज्ञान को माना। कबीर के समय सामंत व्यवस्था भी देश की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार थी। सामंत किसानों मजदूरों का घोर शोषण करते थे। उनके ऊपर लगान का बोझ डालते जबरन उनके खेत छीन उन्हें खेतीहर मजदूर बनने पर विवश करते। यहां भी कबीर ने अपने विचारों को प्रकट किया। जिसके कारण कई बार कबीर की हत्या का असफल प्रयास भी किया गया।

उस काल में विदेशी आक्रमणकारियों का अभी विशेष आतंक था। वह निरंतर भारत में उत्तर की ओर से आक्रमण करते और यहां से धन आभूषण लूटकर ले जाते और कत्लेआम मचाते। मुसलमान आक्रमणकारी तो यहां तक कि मंदिरों को तुड़वाकर मस्जिद बनवाते। हिंदुओं का धर्म बलात परिवर्तन करवाते। हिंदुओं की स्त्रियां भी सुरक्षित नहीं थी, उनका सम्मान सुरक्षित नहीं था। विदेशी शासक आक्रमणकारी यह लूट के उद्देश्य से आते और जाते-जाते भोग विलास के लिए यहां से सुंदर युवतियों को ले जाते, अतः समाज में विदेशियों का आतंक निरंतर बना रहता था। जिसका विरोध कबीरदास ने किया।

5. फक्कड़ स्वभाव

कबीर की मूल विशेषताएं यही थी कि वह फक्कड़ प्रवृत्ति के थे। वह समाज में जहां भी कुछ विपरीत होते देखते वह वहां रोक लगा देते थे। वह परिणाम की चिंता नहीं किया करते थे, बस वह सत्य का साथ देते थे, यही कारण है कि वह स्वभाव के फक्कड़ थे, स्वभाव के कारण उन की सभी धर्म के ठेकेदारों से ठनी रहती थी। वह निरंतर व्यर्थ के कर्मकांडों की निंदा करना चाहते। वह किसी भी धर्म संप्रदाय का हो, वह मुस्लिम को भी लताड़ते थे और हिंदुओं को भी।

कांकड़ पाथर जोरि के मस्जिद लई चुनाव
ता चढ़ी मुल्ला बांग दे क्या बहरो हुआ खुदाय

वह कहते हैं कि ईश्वर तो सर्वत्र व्याप्त है, चर-अचर सब में तो फिर यह किस प्रकार का ढ़ोंग है। कांकड़ पाथर से मस्जिद बनाकर उसके ऊपर लाउडस्पीकर लगा कर बांग देना, यह तो केवल ढ़ोंग है और कुछ नहीं। जब

ईश्वर को आप सभी जगह पाते हैं तो यह सवाल क्यों ?क्या खुदा बहरा है ?क्या इतना ही नहीं, वह ब्राह्मण की कुटिल चाल की भी भर्त्स्ना करते हैं, वह अपने को जाति में श्रेष्ठ बताकर निर्धन, निर्बल व अशिक्षित व्यक्तियों का शोषण कर रहे हैं। उन्होंने शिक्षा पर अपना एकाधिकार जमा लिया है। इस प्रकार कबीर क्रोधित होते हैं और कहते हैं–

जो तू बामन बामनी का जाया
और राह ते काहे ना आया

कबीर के फक्कड़ स्वभाव में व्यंग की मार है, व्यंग्यकार ईंट, पत्थर से नहीं, बल्कि सलीके से मारता है और यह मारपीट व पत्थर से भी गहरी होती है।

6. विद्रोही स्वभाव

कबीर फक्कड़ के साथ-साथ विद्रोही भी थे। यह शोभा उनके जन्म से प्राप्त था। शायद यह स्वभाव उनके त्याग के कारण हुआ, क्योंकि उनकी माता ने जन्म देकर लोकलाज से बचने के लिए उनका त्याग किया। फक्कड़ प्रवृत्ति उन्हें स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुई। कबीर ने सदैव ही अनैतिकता का विद्रोह किया, समाज में फैले अशिक्षा अंधविश्वास वह चाहे आडंबर का विद्रोह किया–

दिन को रोजा रहत हैं रात हनत है गाय
यह तो खून वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय

धर्म का अत्याचार सुख शांति के लिए लोग पूजा पाठ व अन्य कर्मकांड करते हैं, किंतु एक जीव की हत्या तो वास्तविक रूप में हत्या ही है, इस हत्या से खुशी कैसे मिल सकती है। यह कैसे बंदगी हो सकती है, क्या खुदा हत्या के लिए कहता है?

अत: कबीर इस परंपरा का विद्रोह करते हैं। हिंदू के संत महात्मा व धर्म के ठेकेदारों ने धर्म की आड़ में केवल भोग विलास करते हैं, स्त्रियों का भोग करते हैं और अपने श्रेष्ठ होने का डंका बजाय फिरते हैं। यहां कबीर का विद्रोही भावना जागृत हो जाता है और अपने विद्रोह से इस परंपरा व अंधविश्वास का विरोध करते हैं।

7. घुमक्कड़ स्वभाव

कबीर रमता जोगी बहता पानी की तरह थे, जो कभी एक जगह टिककर नहीं रह सकते थे। वह स्वभाव के उग्र थे, किंतु घुमक्कड़ भी थे। वह स्वभाव

से राहुल संकृत्यायन की तरह थे जो अपने जीवन में कहीं एक जगह टिककर नहीं रहे। कबीर जब भाग जाया करते थे तो उन्हें घर की याद निरंतर ही आया करती थी, उन्हें एक दिन यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि गृहस्थ से बड़ा कोई आश्रम नहीं है अतः उन्होंने अपने घर के लिए प्रस्थान किया और अंत समय तक वह वहीं रहे।

8. परोपकारी भावना से युक्त

कबीर में परोपकार की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह जन्म से ही परोपकारी स्वभाव के थे, निर्धन व्यक्ति लाचार व्यक्ति की सहायता करते। वह अंधे भिखारी, जो कबीर के कविता गाकर भिक्षाटन किया करता था। कोतवाल द्वारा मार दिए जाने के बाद कभी रुस भिखारी की वृद्धि माता को जीवनपर्यंत सहायता करता है। उसको अपनी मां का दर्जा देता है। इतना ही नहीं कबीर का परोपकार की भावना तो इतनी प्रबल थी कि वह लोगों के घर जाकर जल जाने के उपरांत शरण भी देते थे, कबीर परोपकार भावना को श्रेष्ठ मानते हैं।

9. आकर्षक व्यक्तित्त्व

कबीर का व्यक्तित्त्व आकर्षक था, वह जहां अपने संत-समागम, सत्संग के लिए बैठते वहां लोग कबीर की ओर खिंचे चले आते थे, और कबीर के विचारों को ग्रहण करते थे, कबीर का अनुसरण करते कबीर के द्वारा गाए गए कविता समय को लोग जुबानी याद करते और उसको निरंतर पाठ करते।

कबीर के सत्संग में त्रस्त व्यक्ति व मस्त व्यक्ति दोनों प्रकार के सम्मिलित होते हैं नाई, मजदूर, शिक्षित, अशिक्षित सभी कबीर के प्रकाश से प्रकाशित होना चाहते हैं, कबीर की वाणी रस का उत्तम आस्वादन करवाता है।

10. मौलिकता

भक्तिकाल को जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्ण काल कहा है, क्योंकि उस काल में जिस प्रकार का साहित्य लिखा गया वैसा किसी और काल में नहीं लिखा गया। तभी वह साहित्य आज भी घर-घर में पढ़ा जाता है। उस काल के सभी कवियों ने मौलिक रचना की, उन्होंने साहित्य का अनुवादन नहीं किया। कबीर की भी यही विशेषता है कि, उन्होंने मौलिक साहित्य की ही रचना की उन्होंने

जैसी परिस्थिति देखी वैसी ही साहित्य की रचना की, उनका केंद्र-बिंदु समाज का त्रस्त व्यक्ति होता था। कबीर ने गुरु की महत्ता को भी स्वीकार किया है।

गुरु गोविंद दो खड़े काके लागू पायं
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो मिलाय।

कबीर ने एक जगह और गुरु की समग्रता का वर्णन किया है

सतगुरु की महिमा अनंत किया उपकार
लोचन अनंत आधारित अनंत दिखावण हार

अत: कबीर के साहित्य मौलिकता से लबालब है साथ ही वे इसका श्रेय गुरु को प्रदान करते हैं।

11. भाषा विविधता से युक्त

कबीर घुमक्कड़ प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, अत: भाषा में विविधता कार्य आना तो निश्चित ही स्वाभाविक बात है। उनके भाषा अवधी ब्रज मैथिली पंजाबी राजस्थानी उर्दू आदि से मिश्रित भाषा थी। उन्होंने अपने साहित्य में अनेक प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया है, कबीर ने भाषा को बहता नीर माना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को भाषाओं का डिक्टेटर कहां है, उन्होंने अपने जीवन में एक जगह कहीं टिक कर नहीं रहे, उन्होंने जहां भी अपना पड़ाव डाला, वहां की भाषा संस्कृति को ग्रहण किया। उन्होंने अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास किया, अपने विचार की अभिव्यक्ति उन्होंने जगह-जगह पर किया जिसके कारण लोग कबीर से प्रभावित होकर संत परंपरा में लीन हुए।

12. उद्देश्य

कबीर एक संत कवि व समाज सुधारक थे, अत: सभी का कर्म कहीं ना कहीं समाज को जागरुक करना शिक्षित करना ही होता है, अत: कबीर में यह गुण होने के कारण उनका भी उद्देश्य समाज को सुधारना जागरुक करना वह सभ्य बनाना ही था, अत: कबीर ने समाज का कल्याण हेतु उन्होंने सामाजिक कुरीतियों आडंबरों को दूर करना ही कबीर का मूल उद्देश्य था।

3

कबीरदास की भाषा और शैली

कबीर सन्त कवि और समाज सुधारक थे। उनकी कविता का एक-एक शब्द पाखंडियों के पाखंडवाद और धर्म के नाम पर ढ़ोंग व स्वार्थपूर्ति की, निजी दुकानदारियों को ललकारता हुआ आया और असत्य व अन्याय की पोल खोल धज्जियाँ उड़ाता चला गया। कबीर का अनुभूत सत्य अंधविश्वासों पर बारूदी पलीता था। सत्य भी ऐसा जो आज तक के परिवेश पर सवालिया निशान बन चोट भी करता है और खोट भी निकालता है। कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था, वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया– बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है।

असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है, पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे

बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता, फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया-बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवा फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है, वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है। असीम-अनंत ब्रह्मानन्द में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है, पर 'बेहद्दी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गम्भीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता, फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधु और जोगिया, मुल्ला और मौलवी-सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे। अत्यन्त सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खानेवाला केवल धूल झाड़ के चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।

इस प्रकार यद्यपि कबीर ने कहीं काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की, तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से छलके हुए रस से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ है। कबीर ने जिन तत्त्वों को अपनी रचना से ध्वनित करना चाहा है, उसके लिए कबीर की भाषा से ज्यादा साफ और जोरदार भाषा की सम्भावना भी नहीं है और जरूरत भी नहीं है, परन्तु कालक्रम से वह भाषा आज के शिक्षित व्यक्ति को दुरूह जान पड़ती है। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएँ वर्तमान हैं। इसका ऐतिहासिक कारण है। इस ऐतिहासिक कारण को

जाने बिना उस भाषा को ठीक-ठीक समझना सम्भव नहीं है। इस पुस्तक में उसी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययन का प्रयास है। यह प्रयास पूर्ण रूप से सफल ही हुआ होगा, ऐसा हम कोई दावा नहीं करते, परन्तु वह ग्रहणीय नहीं है, इस बात में लेखक को कोई सन्देह नहीं है।

पंचमेल खिचड़ी भाषा

कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। इसी व्यक्तित्त्व के कारण कबीर की उक्तियाँ श्रोता को बलपूर्वक आकृष्ट करती हैं। इसी व्यक्तित्त्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक सम्भाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को 'कवि' कहने में संतोष पाता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा -अरबी, फारसी, पंजाबी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं, इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है, जो वाणी के अगोचर हैं, उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है, जो मन और बुद्धि की पहुँच से परे हैं, उसे बुद्धि के बल पर समझने की कोशिश की गई है, जो देश और काल की सीमा के परे हैं, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है। कहते हैं, समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यन्त अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अधिल विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रन्थों में रूप की कल्पना की है, आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझा सकना सम्भव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन-व्याप्त हो, इस ब्रह्मांण्ड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम भिने हुए हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापित्व को खंडित किया है। भला जो सर्वत्र परिव्याप्त है, उसके लिए तीर्थ विशेष में जाने की क्या व्यवस्था? सो हे जगदीश, मेरी बुद्धिगत विकलता के ये तीन अपराध-अरूप की रूपकल्पना,

अनिर्वचनीय का स्तुतिनिर्वचन, व्यापी का स्थान-विशेष में निर्देश-तुम क्षमा करो।' क्या व्यास जी के महान् आदर्श का पदानुसरण करके इस लेखक को भी यही कहने की जरूरत है?

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम,
स्तुत्या निर्वचनीयताऽखिलगुरोदूरी -तायन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रदिना,
क्षन्तव्यं जगदशी, तद् विकलता-दोषत्रयं मत्कृतम।

वृद्धावस्था में यश और कीर्त्ति ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्रा कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे, किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान॥

मूर्त्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए कबीरदास ने कहा है-

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
या ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार॥

रूपातीत व्यंजना और खंडन-मंडन

कबीरदास

प्रेम भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु न मानने का ही यह परिणाम हुआ है कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उन्हें घमंडी, अटपटी वाणी का बोलनहारा, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के बारीक भेद को न जानने वाला, अहंकारी, अगुण-सगुण-विवेक-अनभिज्ञ आदि कहकर अपने को उनसे अधिक योग्य मानकर संतोष पाते रहे हैं। यह मानी हुई बात है कि जो बात लोक में अहंकार कहलाती है वह भगवत्प्रेम के क्षेत्र में, स्वाधीनभर्तृका नायिका के गर्व की भाँति अपने और प्रिय के प्रति अखंड विश्वास की परिचायक है, जो बात लोक में दब्बूपन और कायरता कहलाती है, वही भगवत्प्रेम के क्षेत्र में भगवान के प्रति भक्त का अनन्य परायण आम्तार्पण होती है और जो बातें लोक में परस्पर

विरुद्ध जँचती हैं भगवान के विषय में उनका विरोध दूर हो जाता है। लोक में ऐसे जीव की कल्पना नहीं की जा सकती, जो कर्णहीन होकर भी सब कुछ सुनता हो, चक्षुरहित बना रहकर भी सब कुछ देख सकता हो, वाणीहीन होकर भी वक्ता हो सकता हो, जो छोटे-से-छोटा भी हो और बड़े-से-बड़ा भी, जो एक भी हो और अनेक भी, जो बाहर भी हो भीतर भी, जिसे सबका मालिक भी कहा जा सके और सबका सेवक भी, जिसे सबके ऊपर भी कहा जा सके और सर्वमय सेवक भी जिसमें समस्त गुणों का आरोप भी किया जा सके और गुणहीनता का भी और फिर भी जो न इन्द्रिय का, विषय हो, न मन का, न बुद्धि का, परन्तु भगवान के लिए सब विशेषण सब देशों के साधक सर्व-भाव से देते रहे हैं, जो भक्त नहीं हैं, जो अनुभव के द्वारा साक्षात्कार किए हुए सत्य में विश्वास नहीं रखते, वे केवल तर्क में उलझकर रह जाते हैं, पर जो भक्त हैं, वे भुजा उठाकर घोषणा करते हैं, 'अगुणहिं-सगुणहिं नहिं कछु भेदा' (तुलसीदास)। परन्तु तर्क परायण व्यक्ति इस कथन के अटपटेपन को वदतो-व्याघात कहकर संतोष कर लेता है।

यदि भक्ति को कबीरदास की वाणियों की केन्द्रीय वस्तु मान लिया जाता तो निस्सन्देह स्वीकार कर लिया जाता कि भक्त के लिए वे सारी बातें बेमतलब हैं, जिन्हें कि विद्वान् लोग बारीक भेद कहकर आनन्द पाया करते हैं। भगवान के अनिवर्चनीय स्वरूप को भक्त ने जैसा कुछ देखा है वह वाणी के प्रकाशन क्षेत्र के बाहर हैं, इसीलिए वाणी नाना प्रकार से परस्पर विरोधी और अविरोधी शब्दों के द्वारा उस परम प्रेममय का रूप निर्देश करने की चेष्टा करती है। भक्त उसकी असमर्थता पर नहीं जाता, वह उसकी रूपातीत व्यंजना को ही देखता है। भक्ति तत्त्व की व्याख्या करते-करते उन्हें उन बाह्याचार के जंजालों को साफ करने की जरूरत महसूस हुई है, जो अपनी जड़ प्रकृति के कारण विशुद्ध चेतन-तत्त्व की उपलब्धि में बाधक है ! यह बात ही समाज सुधार और साम्प्रदाय ऐक्य की विधात्री बन गई है, पर यहाँ भी यह कह ना ठीक है कि वह भी फोकट का माल या बाईप्रोडक्ट ही है।

कबीरदास का भक्त रूप

कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं। मुश्किल यह है कि इस केन्द्रीय वस्तु का प्रकाश भाषा की पहुँच से बाहर है। भक्ति कहकर नहीं समझाई

जा सकती, वह अनुभव करके आस्वादन की जा सकती है। कबीरदास ने इस बात को हजार तरीके से कहा है। इस भक्ति या भगवान के प्रति अहतुक अनुराग की बात कहते समय उन्हें ऐसी बहुत सी बातें कहनी पड़ी हैं, जो भक्ति नहीं हैं। पर भक्ति के अनुभव करने में सहायक हैं। मूल वस्तु चूँकि वाणी के अगोचर है, इसलिए केवल वाणी का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अगर भ्रम में पड़ जाना पड़ा हो तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वाणी द्वारा उन्होंने उस निगूढ़ अनुभवैकगम्य तत्त्व की और इशारा किया है, उसे ध्वनित किया गया है। ऐसा करने के लिए उन्हें भाषा के द्वारा रूप खड़ा करना पड़ा है और अरूप को रूप के द्वारा अभिव्यक्त करने की साधना करनी पड़ी है। काव्यशास्त्र के आचार्य इसे ही कवि की सबसे बड़ी शक्ति बताते हैं। रूप के द्वारा अरूप की व्यजंना, कथन के जरिए अकथ्य का ध्वनन, काव्य-शक्ति का चरम निर्देशन नहीं तो क्या है? फिर भी ध्वनित वस्तु ही प्रधान है, ध्वनित करने की शैली और सामग्री नहीं। इस प्रकार काव्यत्व उनके पदों में फोकट का माल है—बाइप्रोडक्ट है, वह कोलतार और सीरे की भाँति और चीजों को बनाते-बनाते अपने-आप बन गया है।

4

कबीर की सामाजिक चेतना

सामाजिक से हमारा तात्पर्य किसी देश एवं काल विशेष से संबंधित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति से होता है। इसका उद्‌भव सामाजिक अन्याय, अनीति, दुराचार, शोषण की प्रक्रिया से होता है। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ प्रेरक होती हैं। सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में रहती है। साहित्य को सामाजिक परिवर्तन मानते हुए साहित्यकार व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों स्तरों पर सामाजिक चेतना का अनुसरण करता है।

कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में पहली धारणा ये बनती है कि वे समाज सुधारक थे। वस्तुतः कबीर बाह्याडम्बर, मिथ्याचार एवं कर्मकांड के विरोधी थे, परन्तु सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते समय वे सर्व-निषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते थे। कबीर अपने समय में प्रचलित हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अनेक प्रकार की साधना पद्धतियों से परिचित थे। उन्होंने सबकी आलोचना की, किन्तु उनका सारतत्त्व समाहित किया। एक भक्त के रूप में उन्होंने शुष्क ज्ञान साधना से आगे बढ़कर संसार के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित किया। उन्हें मानव समाज की विषमाताओं से पीड़ित होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी भक्ति भावना का ही एक पक्ष है।

कबीर की सामाजिक चेतना का श्रेय उन युगीन परिस्थितियों को है, जिनके बीच वे पैदा हुए और रहे। वे परिस्थितियाँ जीवन के सभी क्षेत्रों में भयावह अव्यवस्था, विषमता और अंधविश्वास की परिस्थितियाँ थी। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर ने ऐसी बहुत सी बातें कही हैं, जिन्हें अगर उपयोग किया जाये तो समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसीलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुतः वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। कबीर एक आध्यात्मिक पुरूष थे। उनका सारा जीवन ईश्वर की उपासना में बीता था। भक्ति समझ लाती है, सहानुभूति लाती है और तब आप दूसरे धर्म, दूसरी विचारधारा का हिस्सा बनते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उनके जैसा नहीं बन जाते, वरन् उस धर्म या विचारधारा के प्रति एक समझ पैदा करते हैं। प्रेम, समर्पण, त्याग पर ही यह भक्ति सिद्ध हो सकती है-

कबीर सौदा राम सौं, सिर बिन कदै न होय।

प्रेम भक्ति है-

कबीर निज अधर प्रेम का मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पगतलि धरैए तब निकटि प्रेम का संवाद॥

एक और बात जो कबीर की सामाजिक चेतना के संदर्भ में महत्वर्पूण है, वह यह कि कबीर के अनुसार सारे धर्म अंततः एक हैं। उनके बीच विविधता या अलगाव की भावना के स्थान पर कबीर समन्वय स्थापित करने की बात कहते हैं। समन्वय का अर्थ है कि हम मनुष्य की मूल एकता को स्वीकार करें और उस विशाल मानवतावादी दृष्टि को अपनाएँ, जो समग्र मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से अनेक प्रकार की कुसंस्कार और अभावों के बंधन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास करती है। कबीर ने समस्त बाह्यचारों को छोड़कर साधारण मनुष्य की तरह आचरण करने और भगवान को 'निरपख' भगवान के पद पर स्थापित करने की साधना की थी। इसीलिए वे वेद और कुरान से भी आगे बढ़कर कहते हैं।

गगन गरजै तहाँ सदा पावस झरे, होत
झनकार नित बजत तूरा।
वेद-कत्तेब की गम्म नाहीं-तहाँ रहै
कबीर कोई रमै सूरा॥

यह धर्म निरपेक्षता नहीं धर्म को ठीक से समझना है। बाह्यचारों, व्यर्थ का कुलाभिमानए अकारण ऊँच-नीच की प्रतिक्रियात्मक भावनाओं से समन्वय

और समरसता की ओर गतिशील होना ही उचित है। इन्द्रनाथ चौधरी के अनुसार "कबीर ने बाजार में खड़े होकर हिंदू धर्म और मुस्लिम मजहब के तादाम्य की कोशिश नहीं की थी, बल्कि इन दोनों सम्प्रदायों के बीच की संपूरक स्थिति को समझाने और उसके प्रसार की बात की थी। राम-रहीम की एकता की बात नहीं, अद्वैत ब्रहम और पैंगबरी खुदा को मिलाने की बात भी नहीं, वरन् किस तरह यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, उसका उल्लेख किया और बिना किसी संकोच के दोनों सम्प्रदायों के बीच फैले हुए कट्टरवाद का विरोध करते हुए इन दोनों धर्मों के उन तत्त्वों को उजागर करने का प्रयत्न किया, जिससे एक दूसरे को समझने में आसानी हो और विभिन्नता के बावजूद सौहार्द का प्रसाद हो सके। यह दृष्टिकोण उन्हें विभिन्न-दर्शनग्राही एकेश्वरवादी कबीर बनाता है।"

कबीर के अनुसार यह सारा व्यक्त जगत एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुआ है। इसलिए मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद देखना अज्ञान का द्योतक है। इसीलिए अपनी रचनाओं में कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राहमण-शूद्र के भेद का विरोध किया है, परन्तु इस विचारधारा के पीछे भी आध्यात्मिक सत्य ही है। कबीर का कहना है-

एकहि जोति सकल कपट व्यापक दूजा तत्त्व न होई।

परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची है, फिर बाह्मण और शूद्र का भेद क्यों? एक ही नूर से सारा संसार रचा गया है न कोई भला है न कोई मंद-

"एक बूँद तैं सृष्टि रची है कौन ब्राहमण कौन सूदा"
"एक नूर तैं सब जग कीआ कौन भले को मंदो"
(कबीर ग्रँथावली: डा-तिवारी)

धर्म तथा आचार-व्यवहार से जुड़े बाह्याडम्बरों के प्रति कबीर की कोई आस्था नहीं थी। इन सभी को कबीर ने ढ़ोंग माना और उनकी तीखी आलोचना की। कारण यही था कि ये सभी बाह्याडंबर भेदभाव, ऊँच-नीच की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। समाज में अलगाव की भावना उत्पन्न करने वाले इस प्रकार की सभी गतिविधियों की कबीर ने आलोचना की है। उन्होंने सहज सात्विक जीवन-पद्धति महत्व दिया है। हिन्दु-मुस्लिम दोनों को आड़े हाथ लेते हुए कबीर कहते हैं-

"पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।
तासे या चाकी भली पीस खाये संसार॥ "

"कांकर-पाथर जोरि के मस्जिद लई चिनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय॥

धार्मिक और सामाजिक आधार पर खंड-खंड होते समाज को देखकर ही कबीर ने इस तरह की बात कही थी। वस्तुतः 15वीं शताब्दी में सामाजिक स्थिति अत्यन्त अव्यवस्थित थी, इस विषम स्थिति ने समाज को नैतिक दृष्टि से जर्जर बना दिया था। इसीलिए अनुभूति सम्पन्न कवि और सन्त होते हुए, वाणी कबीर सामाजिक उथल-पुथल से तटस्थ नहीं रह पाये।

उस समय सामन्ती चेतना पूरे उभार पर थी, धन-संपत्ति, सोना-चाँदी और कामिनी या सुंदरी इन सबके प्रति एक विशेष आकर्षण समाज में था। सामान्य और गरीब जनता अभावग्रस्त थी, परन्तु योग विलास में डूबे शासकों और सुविधा संपन्न वर्गों का इस ओर कोई ध्यान नहीं था। इन परिस्थितियों में समाज दया, ममता, प्रेम जैसे उदारचेता विचारों को छोड़कर विलासिता, लालच, हिंसा की ओर बढ़कर पतनोन्मुख हो रहा था। कबीर ने इन सभी सामाजिक बुराइयों पर तीखा प्रहार किया है। भारत के इतिहास का मध्यकाल सामाजिक संक्रांति का युग था। समाज संगठन की दृष्टि से अस्त-व्यस्त था। धर्म दर्शन और संस्कृत की अनेक धाराएँ परस्पर संघर्षरत थीं। हिन्दू-समाज भेदभाव पर आधारित शास्त्रों द्वारा अनुमोदित वर्ण व्यवस्था से संचालित होता था, परन्तु विद्रोह के स्वर भी उठते थे। बौद्धों, जैनों, नाथों और सिद्धों इत्यादि की विद्रोह में महती भूमिका होती थी। हिन्दू समाज के समानान्तर मुस्लिम समाज का धर्म इस्लाम जो कि सैद्धान्तिक आधार पर समानता का पोषक होते हुए विषमता की भावना से ग्रस्त हो रहा था। बाह्यचारों ने एक सीमा तक इसे अपने मूल से भटका दिया था, यद्यपि इनके बीच भी सूफी संत विद्रोही तेवर के साथ आ खड़े हुए थे, परन्तु आम जनता कर्मकाण्डों द्वारा संचालित धर्म के दुष्चक्र में उलझी हुई थी। ऐसे समय में कबीर ने जटिल परिस्थितियों के मध्य अपनी स्वतंत्र दृष्टि मानवतावादी चिन्तन पद्धति और दृढ़ संकल्पना शक्ति के द्वारा समाज में व्याप्त विषमता का न केवल विरोध ही किया, अपितु अपनी वाणियों के माध्यम से समतामूलक समाज के लिए आधारभूमि भी प्रस्तुत की। सामाजिक विशृंखलता का केन्द्र व्यक्ति के लिए उच्च आदर्श उपस्थित करते हुए कबीर कहते हैं कि व्यक्ति को गुण ग्राही और आत्मज्ञानी होना चाहिए। यथा-तरूवर तास बिलविये, बारह मास फलंत। सीतल छाया गहर फल, पंछी केलि करंत, कबीर के अनुसार वास्तव में व्यक्ति वही है, जो सामाजिक

साम्य, स्थापना हेतु अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दे। द्रष्टव्य है–तन मन सीस समरपन कीन्हां, प्रगत जोति तंह आतम लीनां। इसके अतिरिक्त कबीर ने व्यक्ति के आदर्श के रूप में निस्पृहता अहंकारहीनता एवं निर्विषयता इत्यादि के महात्म्य का उल्लेख किया है। देखिए–निरवेरी निहः कांमता, सांई सेती नेह। 'विषिया सू न्यारा रहे, संतनि का अंग एह' सिद्धान्ततः नारी को व्यक्ति से इतर नहीं माना जाना चाहिए, परन्तु व्यवहार में नारी का विषय पृथक रूप से ही विचारणीय होता है। उल्लेखनीय है कि कबीर की नारी निन्दा सर्वविदित है, परन्तु उसी के साथ सीमित संदर्भों में समाज में उनकी आदर्श नारी संबंधी विचारधारा के भी दर्शन होते हैं। वह नारी के लिए त्याग, निष्ठा, पतिव्रत एवं सतीत्व की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं कि उसे अपने पति के लिए जो कि उसके प्रेम का आधार होता है, सब कुछ अर्पित कर देना चाहिए। यथा–इस मन का दीया करों, धरती मैल्यूं जीव। 'लोही सींचो तेज ज्यूं, चित दैखौं तित पीव' ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि कबीर जैसा विद्रोही कवि नारी समाज के प्रति समाज के अन्य अंगों जैसे स्वस्थ मानसिकता नहीं रखता है, परन्तु उपर्युक्त संदर्भ के माध्यम से भारतीय समाज के पारिवारिक संबंधों में पति-पत्नी के संबंधों की पवित्रता का स्वरूप अवश्य सामने आ जाता है।

विद्या ग्रहण करने वाला विद्यार्थी कहलाता है। समाज में विद्यार्थी की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। विद्यार्थी समाज का वह आवश्यक अंग हैं, जो भविष्य के समाज की रूपरेखा का नियन्ता होता है, यद्यपि वर्तमान में विद्या और विद्यार्थी दोनों से संबंधित मान्यताएँ बदल चुकी हैं, परन्तु मध्यकाल तक शिक्षा के मूल उद्देश्यों में से एक एवं मुख्य उद्देश्य अध्यात्म और मानवानुकूल श्रेष्ठ गुणों का विकास था। गुरु एवं शिष्य संबंध सभी मानवीय संबंधों से उच्च एवं पवित्र माने गये। कबीर तो इस संबंध की श्रेष्ठता के प्रबल समर्थक के रूप में सामने आते हैं। यथा–सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार। लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावणहार। विद्यार्थी को सात्त्विक गुरु प्राप्त करने के लिए अपना सम्पूर्ण अर्पित कर देने की बात करते हुए कबीर कहते हैं कि–मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा-तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे है मेरा कबीर ने गुरु शिष्य दोनों के लिए श्रेष्ठता स्वनियंत्रण समदर्शिता एवं आत्म नियंत्रण को आवश्यक मानते हुए समाज के सर्व कल्याण के लिए सहायक माना है। यद्यपि साम्प्रदायिकता का जो भयावह स्वरूप समसामयिक संदर्भों में दृष्टिगत होता है, वह आधुनिक युग का रूप है।

मध्यकाल में साम्प्रदायिक वैमनस्व कारण साम्प्रदायिक श्रेष्ठता की होड़ की मानसिकता पर आधारित थी। वह कभी तो दो धर्मों के मध्य की होड़ के कारण दृष्टिगत होती थी तो कभी एक ही धर्म के विविध सम्प्रदायों के मध्य दिखाई देती थी। कबीर समाज में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने के क्रम में उभय धर्मों की आलोचना में मुखर हो उठते हैं। यथा–जौर खुदाय मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा। 'तीरथ मूरति राम निवासा, दुहु मैं किनहू न हेरा' साम्प्रदायिक साम्य की भावना से संचालित कबीर साहित्य में अनेक दोहे और पद देखे जा सकते हैं, जो समाज में एकता एवं भाईचारे के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहायक सिद्ध प्रतीत होते हैं। इसी भावना के समानांतर वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप समाज में उपजी अस्पृश्यता का विरोध कबीर द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी समाज के संदर्भों की महती विशेषता है। समाज के विकास की प्रमुख बाँधाओं में आर्थिक वैषम्य के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। कबीर आर्थिक विषमता के मूल धन संचय एवं वैभवपूर्ण जीवन पर कुठाराघात करते हुए कहते हैं–कबीर सो धन संचिये, जो आगे कूं होइ। ' सीस चढ़ाये पोठली, ले जात न देख्या कोइ' वास्तविक धन का संकेत करते हुए कबीर कहते हैं कि–निरधन सरधन दोनों भाई प्रभु की कला न मेरी जाई। 'कहि कबीर निरधन है सांइ जाके हिदये नाम न होई' कबीर की मान्यता है कि धन संचय अध्यात्म और समाज दोनों के विरूद्ध है। यही कारण है कि वह आर्थिक वैषम्य के स्थान पर साम्य स्थापित करने के आकांक्षी रूप में सामने आते हैं।

कबीर अपनी वाणियों के माध्यम से सामाजिक ढ़ांचे को विश्रृंखलता से दूर करने के लिए मानवता की भावना की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं। मानवोचित गुणों का उल्लेख करते समय दया, क्षमा, उदारता और दानशीलता आदि को रेखांकित किया जाता है। कदाचित मनुष्यों के यही वह सद्व्यवहार है, जो समाज को सुसंगठित रखने में अहं भूमिका निभा सकते हैं। सद्व्यवहार से संबंधित कबीर काव्य में अनेक पद एवं दोहे बिखरे पड़े हैं। यथा–एते औरत मरदां साजे, ये सब रूप हमारे। 'कबीर पंगुरा राम अलह का, सब गुरु पीर हमारे प्रस्तुत दोहे में कबीर सभी में यहाँ तक कि असहत्य तक में अपनी आत्मा को पहचानते हुए उनका सम्मान एवं सेवा करने की घोषणा करते हैं। प्राचीन काल से ही संसार के अधिकांश समाज में व्यवस्था के लिए जिस विशिष्ट नियमों और उप नियमों का पालन किया जाता है, ऐसे सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक नियम को धर्म की संज्ञा से अभिहीत किया जाता है। व्यवस्था, न्याय, सत्य, अहिंसा और प्रेम इत्यादि

उदात्त भावों पर आधारित होती है। यही समाज को संगति प्रदान करती है, परन्तु जब अव्यवस्था या यूँ कहा जाये कि धर्म के स्थान अधर्म का जब समाज में प्रभाव बढ़ जाता है, तब समाज में विसंगतियों का जन्म स्वाभाविक है। कबीर कालीन समाज की विसंगतियों के उल्लेख की आवश्यकता नहीं। कबीर अधर्म जन्य विश्रृंखल समाज का विरोध ही नहीं करते, वरन सहज एवं सत्य धर्म के स्वरूप को निर्दिष्ट करते हुए कहते हैं कि उसका आधार चरित्र, संयम एवं हृदय तथा मन की स्वच्छता है। यथा–जे मन नहि तजे विकारा, तो क्यूँ तिरिये भो पारा। जब मन छाड़े कुटिलाई तब आइ मिले राम राई कबीर धर्म के अन्तर्गत सातात्त्विक, नैतिकता इत्यादि को भी महत्त्व देते हुए समाज के लिए ऐसे सहज धर्म का निर्देशन करते हैं, जो साधक को स्तुति निन्दा, आशा एवं मान अभिमान से मुक्त कर देता है। यथा–असंतुति निन्दा आसा छोड़ तजे मान अभिमान। लोहा कंचन समि करि देखे ते मूरति भगवाना। भौतिक जगत में मानव समाज के अतिरिक्त जीव–जन्तुओं का भी एक विशाल संसार है। मनुष्यों का साथ इनका घनिष्ठ संबंध भी होता है। इतना ही नहीं वनस्पति जगत की परिवर्तन–परिवर्धन एवं संवेदनशील होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा सर्वव्यापी है। यह संसार के सभी पदार्थों में व्याप्त है, अतः मानव जीव–जन्तु एवं वनस्पतियाँ आध्यात्मिक एकता से परिपूर्ण हैं।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों धरातल पर इन सबको मिलाकर एक विशाल समाज की सृष्टि होती है। समाज के इस विशाल परिप्रेक्ष्य के प्रत्येक अंग के प्रति कबीर काव्य में संवेदनशीलता के दर्शन होते हैं। दृष्टव्य है –भूली मालनि पाती तोड़े, पाती पाली जीव। जो मूरति को पाती तोड़े, सो मूरति निरजीव। जीव–जन्तुओं के प्रति उनकी जागरूकता विलक्षण है यथा–जीव वधत अरू धरम कहते हो, अधरम कहाँ है भाई। आपन तो मुनि जन हैं बैठे, कासनि कहौ कसाई प्रस्तुत तथ्यों के प्रकाश में यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि कबीर सुशिष्ट और संयत समाज के लिए समाज की अधिकांश इकाईयों से संबंधित स्पष्ट विचारधारा रखते हैं। समाज की आधारभूत इकाई व्यक्ति के लिए उन्होंने गुण ग्रहण की क्षमता से युक्त संयम और सदाचार के आदर्श को आवश्यक माना है। यद्यपि महिला कल्याण के विषय पर यथोचित विचार प्रस्तुत नहीं किये, उसे कबीर की सीमा के रूप में उल्लेखित किया जाता है, परन्तु सामाजिक व्यवस्था में उनके लिए कुछ आवश्यक गुणों के रूप में चरित्र पतिव्रत एवं सतीत्व का उल्लेख अवश्य किया है। कबीर साहित्य में

आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों संदर्भों में गुरु को विशेष महत्ता प्राप्त है। धार्मिक विभेद वर्ण व्यवस्था एवं साम्प्रदायिक वैमनस्य का विरोध करके धार्मिक एवं साम्प्रदायिक एकता को उन्होंने सामाजिक साम्य के मूल रूप में रेखांकित किया है। वर्ण भेद को कबीर समाज की विखण्डनकारी शक्ति के रूप में देखते हुए उसे समाप्त करने का आह्वान करते हैं।

कबीर के अनुसार आर्थिक वैषम्य समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है अत: स्वस्थ समाज के लिए वैषम्य समाप्ति आवश्यक है। मानव के साथ उसके परिवेश को जोड़कर जिस विशाल समाज का सृजन होता है उसके अन्तर्सम्बंधों के संदर्भ में कबीर का दृष्टिकोण स्पष्ट एवं संरचनात्मक है। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण के आलोक में कहा जा सकता है कि कबीर ने आध्यात्मिक क्षेत्र में जिस सहज सिद्धान्त को निर्धारित कर उसकी अनुभूति प्राप्त की, उसी अनुभूति के आधार पर उन्होंने समाज में साम्य स्थापित करने हेतु समाज कल्याण की भावना से संचालित स्वस्थ एवं सुसंगठित समाज संबंधी विचारों का प्रतिपादन किया। समाज संबंधी यह वैचारिक प्रतिपादन कबीर साहित्य का आदम प्रतिपादन है। संत कबीर निर्गुण मत के अनुयायी कवि है। भक्ति काल में निर्गुण भक्तों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भारतभूमि जो अनेक रत्नों की खान रही है, उन्हीं महान् रत्नों में से एक थे संत कबीर। कबीर का अरबी भाषा में अर्थ है -महानू वे भक्त और कवि बाद में थे, पहले समाज सुधारक थे। वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी तथा उसी भाषा में कबीर ने समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। हिन्दी साहित्य में कबीर के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। रामचन्द्र शुक्ल ने भी उनकी प्रतिभा मानते हुए लिखा है " प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी। "

1. कबीर के समय में देश संकट की घड़ी से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगाई हुई थी। अमीर वर्ग, वैभव -विलासिता का जीवन जी रहा था, वहीं गरीब दो वक्त की रोटी के लिए तरस रहा था। हिन्दू और मुस्लिम के बीच जाति -पांति, धर्म और मजहब की खाई गहरी होती जा रही थी। एक महान क्रान्तिकारी कवि होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, बुराईयों को उजागर किया। संत कबीर भक्तिकालीन एकमात्र ऐसे कवि थे, जिन्होंने राम -रहीम के नाम पर चल रहे पाखंड, भेद -भाव, कर्म -कांड को व्यक्त किया था। आम आदमी जिस बात को कहने क्या सोचने से भी डरता था, उसे कबीर ने बड़े निडर भाव से व्यक्त किया था। कबीर ने अपनी

वाणी द्वारा समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके साहित्य में समाज सुधार की, जो भावना मिलती है। उसे हम इस प्रकार से देख सकते हैं।

धार्मिक पाखण्ड का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं भगवान को पाने के लिए हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। वह तो घट -घट का वासी है। उसे पाने के लिए हमारी आत्मा शुद्ध होनी चाहिए। भगवान न तो मंदिर में है, न मस्जिद में है। वह तो हर मनुष्य में है।

'' कस्तुरी कुण्डली बसै, मृग ढूंढ़ें बन माँहि।
एसै घटि-घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि॥

2- " माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर,
कर का मनका डारि के मन का मनका फेर। "

3- कबीर ने मूर्ति पूजा की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। अगर पत्थर पूजने से भगवान मिलता है तो मैं तो पूरे पहाड़ को ही पूजने लग जाऊंगा।

" कबीर पाथर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
घर की चाकी कोउ न पूजै, जा पीसा खाए संसार।। "

4- कबीर जी हिंसा का विरोध करते हैं। एक जीव दूसरे जीव को खाता है तो कबीर को बहुत ही टीस होती है। वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं -

बकरी पाती खात है, ताकी काठी खाल,
जो नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।"

कबीर के अनुसार, जिसमें प्रेम, दया व करूणा भावना है, वही सबसे बड़ा ज्ञानी है। बड़े -बड़े ज्ञानी भी प्रेम भावना के बिना मूर्ख के समान है।

"पोथी पढ़ी -पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होय"।

5- साथ ही कबीर जी मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य जीवन क्षण -भर के लिए है। इस पर हमें घमण्ड नहीं करना चाहिए। यह तो पानी के बुलबुले के समान पल में नष्ट हो जाएगा। हमें इसे अच्छे कर्मों में लगाना चाहिए।

"पानी केरा बुदबुदा, उस मानस की जाति।
एक दिनाँ छिप जाता है, जो तारा प्रभात।"

6- कबीर ने समाज में व्याप्त जाँति -पाँति व ऊँच -नीच की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। वे मनुष्य के ज्ञान व कर्म को महान मानते हुए कहते हैं–

"जाँति न पूछो साधा की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।"

7- कबीर ने गुरू को बहुत महत्व दिया है। उनकी अहम् प्रेरणा का मूल स्त्रोत उनके गुरू ही थे, जिनकी कृपा से उन्होंने सभी संकीर्ण बन्धनों को तोड़ा, वे स्वतन्त्र -चिन्तक, उन्होंने बहुत -सी ज्ञानपूर्ण सच्चाईयों को सामान्य जन तक पहुँचाया, आत्म -ज्ञान प्राप्त करना, मूल सत्य से परिचित होना, इस सब कार्यो की प्रेरणा देने वाले उनके गुरू ही थे। वही इस मार्ग को बताने वाले थे।

"सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार,
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।"

8- कबीर ने गुरू को परमात्मा से भी बड़ा दर्जा दिया है तथा वे कहते हैं कि गुरू ही की भक्ति के द्वारा हमें परमात्मा मिलते हैं। वे कहते हैं -

गुरू गोबिन्द दोउ खड़े, काकै लागू पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोबिन्द दियो बताय।
सतगुरू हमसे रीझकर, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीज गया सब अंग। "

9- कबीर ने नारी की निंदा की है। उन्होंने नारी को भक्ति के मार्ग में बाधा माना है। नारी को माया स्वरूप माना है -

"नारी की झांई परै, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, जो नित नारी के संग।।"

10- कबीर जी नाथ योग से प्रभावित थे। इसी कारण उन्होंने नारी को माया स्वरूप माना है तथा साथ ही उन्होंने पतिव्रता नारी की भूरी -भूरी प्रशंसा भी की है।

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।
वाकै एके रूप पर, वारूं कोटि स्वरूप।।"

11- धार्मिक सुधार ओर समाज सुधार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म सुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। कबीर के अनुसार जन्म से ही कोई द्विज या शूद्र अथवा हिन्दू व मुसलमान नहीं हो सकता। इसको कबीर ने कितने सीधे किन्तु मन में रखने वाले ढ़ंग से कहा है -

"जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तो आन वाट है क्यों नहिं आया।।
जौ तूँ तुरक तुरकनी का जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।"

12- कबीर ने उच्चता और नीचता का संबंध व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है, क्योंकि कोई व्यवसाय नीचा नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं भी जीवनभर ये काम करते रहते। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे, जो हाथ पांव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्व जानते थे और आजीविका लिए ही जुलाहे का काम करते रहे।

कबीर जी धन सम्पत्ति जोड़ना भी उचित नहीं समझते थे। उन्होंने थोड़े में ही संतोष करने का उपदेश दिया है। कबीर जी ने आगे की पीढ़ी के लिए भी धन का संचय न करने का उपदेश दिया है -क्योंकि वे जानते थे कि अगर संतान अच्छी व संस्कारी है तो उसके लिए धन की जरूरत नहीं है। अगर संतान आलसी है तो वह सारे संचित धन को बेकार में व्यर्थ कर देगा। इसलिए कबीर ने कहा है -

पूत कपूत तो क्यों धन संचय
पूत सपूत तो क्यों धन संचय।

कबीरदास जी ने सुकर्म के साथ -साथ लोगों को उद्यम करने का भी उपदेश दिया है, जिससे आर्थिक तंगी से निपटा जा सके और पेट भरने के लिए किसी दूसरे पर निर्भर ना रहें।

परिश्रम करने की शिक्षा देने का कबीर जी का मकसद गरीबों की गरीबी दूर करना तो था ही, साथ में देश व समाज की उन्नति करने से भी था। इसलिए कबीर कहते थे -

''कबीर उद्यम अवगुण को नहीं, जो करि जाने कोय।
उद्यम में आनन्द है, सांई सेती होय।।"

13- उन्होंने जीवन को क्षण भंगुर बता कर, लोगों को भक्ति और मानव सेवा का फल प्राप्त करने व साथ ही मनुष्य को दुष्कर्म करने के प्रति भी सचेत किया है।

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की नात,
एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।"

14- इसमें कबीर ने मनुष्य के शरीर को क्षण भंगुर कहा है कि जिस प्रकार पानी का बुलबुला क्षण में ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य शरीर भी पल में नष्ट हो जाएगा। इसलिए हमें अच्छे कर्म करने चाहिए।

डॉ. पारसनाथ तिवारी लिखते हैं " सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक पाखंडों पर प्रहार किया।"

15- उनकी सबसे बड़ी विशेषता एकत्व की भावना का समर्थन है। डॉ. रामजीलाल के अनुसार -" कबीर ने सामाजिक विषमता को मिटाकर एकत्व की स्थापना का निश्चय किया। कबीर को प्रगतिशील कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। पाँच सौ -छः सौ वर्ष पूर्व कही गई बात आज भी प्रासंगिक व सम -सामयिक है। " कबीर ने व्यक्ति व समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस तरह से कबीर भक्त, योगी व दार्शनिक होने के साथ -साथ समाज सुधारक भी थे। कबीर ने समाज सुधार के लिए प्रबल प्रयत्न कर तात्कालीन समाज को अंधकार से निकालने का भरसक प्रयास किया।

इस तरह से कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। उनकी वाणियों में सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याण का मार्ग झलकता था, जो आज भी समाज के लिए दर्पण का काम करता है। कबीरदास का जीवन, मानवीय गुणों से ओत -प्रोत था, वे सभी जीवों को समदृष्टि से देखते थे, किसी व्यक्ति विशेष की न तो कभी निन्दा करते थे और न ही स्तुति। वे उस व्यक्ति व समाज की बुराईयों की खुलकर निंदा करते थे, जिनमें उनको आडम्बर, पाखण्ड व ढ़ोंग नजर आता था, ऐसे में वो खुलकर बोलते थे -

हिन्दू के दया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं।
कहें कबीर दोनों गए, लख चौरासी माहिं॥

कबीर लोक कल्याणकारी भावना के प्रबल समर्थक थे। वे अहंकारियों का विरोध कर निम्न वर्गीय लोगों के पक्षधर थे। वे कहते हैं -

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सो, लोह भसम हो जाय॥

कबीर जी स्वयं एक गृहस्थ थे, इसलिए वे गृहस्थ व वैरागी दोनों को समान आदर देते थे -

"बैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार।
दूहूं चूका रीता पड़े, ताकूं बार न पार॥"

कबीर जी पूरे विश्व को एक कुटुम्ब मानते हैं। इसलिए वे पूरे विश्व का ही सुधार चाहते हैं –

"सीलवन्त सबसे बड़ा, सर्व रतन की खानि
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥"

अत: हम कह सकते हैं कि कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं समाज को लेकर स्वप्न द्रष्टा भी थे। उनके मन में भारतीय समाज का एक प्रारूप था, जिस पर वे एक विजन के साथ काम कर रहे थे। "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी योगी नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे।"

16– इस प्रकार कबीर का अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित था, वो किसी प्रकार के बाह्य आडंबर तथा शोषण के खिलाफ खड़े थे। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है कि " कबीरदास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता था, दूसरी ओर मुसलमान, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिवा, जहाँ एक ओर ज्ञान भक्ति मार्ग निकल जाता है, दूसी ओर योगमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों को देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गये मार्गों के गुण दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। "

कबीर की सामाजिक चेतना के आयाम

कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार, पाखण्ड का बोलबाला था और हिन्दू-मुसलमान आपस में झगड़ते रहते थे। धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का बोलबाला था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी, जो समाज में व्याप्त इन बुराइयों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके, धर्मों के अनुयायियों को बिना किसी भेदभाव के फटकार सके और सदाचार का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। कबीर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उल्लेखनीय है कि उनमें हिन्दु और इस्लाम

की रुढ़ियों, संकीर्णताओं और कट्टरताओं के विरुद्ध खड़े होने की जैसी दृढ़ता थी, वैसी ही सच को कहने की निर्भीकता भी थी। उन्होंने कहा था–

''साँच ही कहत और साँच ही गहत है,
काँच कू त्याग कर साँच लागा।
कहै कबीर यूँ भक्त निर्भय हुआ।
जन्म और मरन का मर्म भागा।''1

कबीर की सामाजिक चेतना या समाज सुधारक व्यक्तित्त्व पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि क्या मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्याओं को धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या से बिल्कुल अलग करके देखा जा सकता है। एक क्षण के लिए मध्यकालीन या कबीर कालीन समाज को दरकिनार करके अपने आधुनिक समाज को देख लिया जाए तो बात कुछ अधिक साफ ढ़ंग से समझ में आ जायेगी। आज के समाज की अनेक समस्याओं में से सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या है, धार्मिक कट्टरपन। इसी धार्मिक कट्टरता या साम्प्रदायिकता के कारण एक आदमी दूसरे आदमी के खून का प्यासा बन जाता है, जिसके कारण समाज में व्यक्तियों का सह अस्तित्त्व ही खतरे में पड़ जाता है, जो सामाजिक संगठन की मूलभूत आवश्यकता है।

जहाँ तक कबीर के समाज सुधारक होने का प्रश्न है, यह निर्विवाद सत्य है कि वे बुद्ध, गाँधी, अम्बेडकर इत्यादि क्रांतिकारी समाज सुधारकों की परम्परा में शामिल होते हैं। एक महान समाज सुधारक की मूल पहचान यह है कि वह अपने युग की विसंगतियों की पहचान करें, एक मौलिक व समयानुकूल जीवन दृष्टि प्रस्तावित करें और इस जीवन दृष्टि को स्थापित करने के लिए हर प्रकार के भय और लालच से मुक्त होकर दृढ़तापूर्वक संघर्ष करें। कबीर के व्यक्तित्त्व का विश्लेषण करें तो हम समझ सकते हैं कि वे जिस सामंतवादी युग में थे वह सामाजिक दृष्टि से अपकर्ष का काल था। विलासिता जैसे मूल्य समाज में फैले हुए थे। नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने मानव समाज को खंडित किया था। धर्म का आडम्बरकारी रूप वास्तविक धार्मिकता को निगल चुका था और भाषा से लेकर जीवन शैली तक एक प्रकार का आभिजात्य उच्च वर्गों की मानसिकता में बैठा हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने मानव मात्र की एकता का सवाल उठाया और स्पष्ट घोषणा की कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय। '' वे समाज के प्रति अति संवेदनशीलता से भरे रहे, क्योंकि 'सुखिया' संसार खाता और सोता रहा, जबकि संसार की

वास्तविकता समझकर 'दुखिया' कबीर जागते और रोते रहे। यह निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

''सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै।'' 2

यह संवेदनशीलता निष्क्रिय नहीं थी, बल्कि इतनी ज्यादा दृढ़ता और आत्मविश्वास से भरी थी कि बेहतर समाज के निर्माण के लिए कबीर अपना घर फूँकने को पूर्णत: तैयार थे–

''हम घर जारा आपना, लिया मुराड़ा हाथ।
अब घर जारौं तासु का, जो चलै हमारे साथ।।''3

कबीर के समाज के प्रति यही दृष्टिकोण वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, भाषाई आभिजात्य और धार्मिक आडम्बरों के कठोर खंडन में साफ दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था को धार्मिक व्यवस्था से बहुत अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जहाँ जाति–भेद, वर्ण–भेद धार्मिक व्यवस्था का ही परिणाम है, जहाँ पति–पत्नी का सम्बन्ध आध्यात्मिक बन्धन है, जहाँ व्यक्ति, परिवार और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों का मूलाधार धर्म हैं, वहाँ सामाजिकता धार्मिकता से अलग कैसे हो सकती है। ब्राह्मण छुआछूत को इसलिए बढ़ावा देता है कि वह इसे अपना धर्म मानता है। यही नहीं एक बधिक जानवरों का वध इसलिए करता है कि यह उसका धर्म (ईश्वर द्वारा निर्धारित कार्य) है। शूद्रों को सभी वर्गों की सेवा इसलिए करनी चाहिए कि ईश्वर ने उसे इसी के लिए पृथ्वी पर भेजा है। जिस देश में गरीबी–अमीरी, सुख–दु:ख, जाति–पाति, ऊँच–नीच सभी कुछ ईश्वर की इच्छा से निर्धारित है, उस देश में यदि किसी भी तरह का सामाजिक परिवर्तन लाना है तो उसके लिए धार्मिक परिवर्तन की दिशा में ही प्रयत्न करना होगा। आज के बौद्धिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उपर्युक्त बातें आधारहीन भले ही हों, किंतु मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में ये शत–प्रतिशत सत्य हैं। कबीर जैसा ओजस्वी तथा विद्रोही रचनाकार जब इस तरह का भाव व्यक्त कर सकता है तो भ्रम की गुंजाइश कहाँ रह जाती है–

''पूरब जनम हम बाभन होते ओछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।।''4

इसलिए यह कहना कि कबीर का व्यक्तित्त्व मुख्यत: भक्त है। समाज सुधार उनके लिए गौण है। समीचीन नहीं है कि कबीर जिस तरह के भक्त हैं वह स्वयं में ही एक नवीन सामाजिक पद्धति एवं मानवीय समता की स्वीकृति

तथा पक्षधरता का प्रमाण है। यह भक्ति मार्ग ऐसा है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का अलगाव नहीं है, सभी एक हैं और केवल मनुष्य हैं। यदि इनकी कोई उपाधि है, तो वह भी एक ही है, जो है संत या भक्त। इस साधना में ब्राह्मणों का वर्चस्व नहीं है। ब्राह्मण के महत्व को अस्वीकार करना, सभी वर्गों के लिए एक नये आध्यात्मिक मार्ग की खोज करना, वेद, शास्त्रों में प्रतिपादित उन मान्यताओं को अस्वीकार करना, जो ब्राह्मणों के महत्व को स्वीकार करती है आदि युग-युग से निर्मित सामाजिक व्यवस्था पर गहरी चोट है-''शास्त्र और सम्प्रदायों का निषेध करके कबीर केवल एक नयी भक्ति पद्धति को ही नहीं जन्म दे रहे थे, बल्कि ढ़ोल पीट-पीटकर जता रहे थे कि मुक्ति का मार्ग ब्राह्मण के घर से होकर नहीं जाता-जैसा कि युगों-युगों से प्रचारित किया जा रहा है। ब्राह्मण, वेद तथा वेद मार्ग के महत्व को अस्वीकार करके कबीर ने वस्तुतः सामंती व्यवस्था के मर्म पर आघात किया था। उनके भक्त रूप को महत्व देना, प्रकारांतर से उनके सामाजिक विद्रोह को हाशिये में डालना है।''5

चूँकि सामाजिक व्यवस्था से जुड़े हुए अनेक मुद्दों के संदर्भ में धर्म की दुहाई दी जाती थी, इसीलिए कबीर ने उनका विरोध करने के लिए धर्म की ही व्यवस्था में से तर्क ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। जाति-पांति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करने के लिए उन्होंने आध्यात्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं का आधार ग्रहण किया। भारतीय दर्शन का बहुविख्यात सिद्धान्त अद्वैतवाद तत्त्वतः ब्रह्म की सत्ता को सत्य और शेष को असत्य मानता है। कबीर ने दर्शन के इस सूत्र का सामाजिक समता के लिए उपयोग किया। जब एक ही तत्त्व सर्वत्र सब घट में व्याप्त है तो भेद-भाव कहाँ से पैदा हो जाता है-

''एकहि जोत सकल घट व्यापक, दूजा तत्त्व न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो, भटकि मरै जनि कोई।।'' 6

कबीर ने परिस्थितियों के अभिशाप से धर्म को बचाने के लिए विश्व-धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने घोषणा की कि सबका ईश्वर एक ही है। मुसलमान और हिन्दू भले ही विविध नामों से अपने ईश्वर को पुकारे तथापि उनके ईश्वर में किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं है। सत्य एक है, भले ही संप्रदाय अनेक हो। उन्होंने कहा-

''हम तो एक-एक कर जाना।
दोय कहैं तिनको है दो जग, जिन नाहीं पहिचाना।।

एकै पवन एक ही पानी एक ज्योति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा॥''7

कबीरदास ने यह भी अनुभव किया था कि जाति व्यवस्था को अगर शिथिल न किया जाएगा, तो धर्म की रक्षा संभव न हो सकेगी। इसलिए जाति बंधन की परंपरा तोड़ने के लिए उन्होंने अभूतपूर्व प्रयत्न किया।

''जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का कोई'' 8

के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा कर उन्होंने धर्म को सशक्त और सुसंगठित किया। जाति भेद की संकीर्णता जिस हद तक पहुँच गयी थी, उसका स्पष्ट संकेत कबीर की रचनाओं में मिलता है।

''तुम कत् बाम्हन हमकत सूद।
हम कत् लोहू तुम कत् दूध॥
कह कबीर जे ब्रह्म विचारे।
सो ब्राह्मा कहियतु है हमारे॥ '' 9

इसी प्रकार कबीर ने हिन्दू-मुसलमानों दोनों के पाखण्डों का खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव-धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। कबीर ने दोनों को कसकर फटकारा जो इस प्रकार है-

''अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई, गागर छुअन न देई।
वेश्या के पायन तर सोयै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया, मुर्गी-मुर्गा खाई।
खाला के घर बेटी ब्याहै, घर ही में करैं सगाई। '' 10

कबीर मूर्तिपूजा के घोर विरोधी थे। वे मानते थे जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिए कोई आधार नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? अतः मूर्तिपूजक हिन्दुओं को फटकारते हुए वे कहते हैं-

''पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार॥ '' 11

कबीर की तर्कवादी सोच का एक पहलू उनके आडंबर विरोधी नजरिये में दिखता है। वे मध्यकाल के संत थे, इसलिए ईश्वर में उनकी गहरी आस्था थी। किंतु अपनी सहज तार्किकता से वे समझते थे कि ईश्वर, जो अपने आप में पूर्ण है, किसी भी प्राणी से यह अपेक्षा नहीं रहता होगा कि वह उसके नाम पर बलि चढ़ाए, तीर्थाटन या कर्मकांड करें। अपनी इसी तार्किकता के चलते

उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित आडम्बरों पर करारा प्रहार किया। उन्होंने देखा कि हिन्दुओं में मुंडन कराने की प्रथा प्रचंड रूप में विद्यमान है। विशेष रूप से मंदिरों और मठों में ईश्वर के साधक इस लालच में गंजे हो जाते थे कि इस परंपरा पर चलकर स्वर्ग तथा ईश्वर की उपलब्धि कुछ आसान हो जाएगी। कबीरदास ने इस अतार्किक परंपरा पर जबरदस्त व्यंग्य करते हुए कहा–

''मूंड मुड़ाए हरि मिले, सब कोइ लेय मुड़ाय।
बार-बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।। '' 12

कबीर ने मुसलमानों को भी आडंबरों के लिए क्रोध के साथ फटकारा है। जब उन्होंने मस्जिद के ऊपर चढ़कर मौलवी को अजान करते देखा तो व्यंग्य करते हुए पूछा कि क्या तुम्हारा खुदा बहरा है, जो नीचे से तुम्हारी आवाज नहीं सुन पाता। मौलवी पर व्यंग्य करते हुए कबीर ने निम्नलिखित प्रसिद्ध कथन कहा–

''काँकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लेई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।'' 13

आज भी हमारे समाज में धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास हर जगह मौजूद है। इन आडंबरों के रहते हम वैज्ञानिक स्वभाव से युक्त समाज का निर्माण नहीं कर सकते। कबीर का महत्व यह है कि वे हमें आडंबरों और अंधविश्वासों पर तार्किक सवाल खड़े करना सिखाते हैं। ऐसा वैज्ञानिक स्वभाव अगर सभी का हो जाए तो निश्चित तौर पर तमाम रूढ़ियां और अतार्किक प्रथाएं समाप्त हो सकती है।

कबीर हमें कुछ अन्य मामलों में भी नैतिक सलाह देते हैं और उनकी अधिकांश नैतिक सलाहें आज भी हमारे काम की हैं। उदाहरण के लिए, एक दोहे में उन्होंने संदेश दिया है, जो आज के उपभोक्तावादी समाज के लिए बेहद उपयोगी है–

''साई उतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।''14

कबीर ने अहिंसा की बात भी अत्यंत गहराई के साथ रखी है। उन्होंने महावीर और बुद्ध की परंपरा के अलावा वैष्णव परंपरा से भी अहिंसा का सिद्धान्त सीखा और निजी जीवन में इसका उपयोग भी किया। उनका कथन है कि ''साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय। '' एक दूसरे कथन में तो उन्होंने मांसाहार करने वालों को जमकर फटकार लगाई है और चेतावनी दी है कि उनके

द्वारा की गई पशु-हत्याओं का हिसाब ईश्वर अवश्य करेगा। वे मजेदार सा तर्क देते हुए कहते हैं कि बकरी तो सिर्फ पत्ते खाती है और इतने से ही उसकी खाल उतार ली जाती है। सोचकर देखिए जो इंसान बकरी खाते हैं, उनका क्या हाल होने वाला है-

''बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥''15

कबीर की सलाह है कि व्यक्ति को दूसरों से बातचीत के लिए विनम्र भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए। वे इस बात को समझते थे कि अधिकांश झगड़े भाषा की असावधानियों के कारण ही जन्म लेते हैं, न कि वैचारिक या मानसिक वैपरीत्य के कारण। इसलिए उन्होंने स्पष्ट सलाह दी कि-

''ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
और को सीतल करे, आपहु सीतल होय।''16

कबीर हमें आत्म-आलोचना करना भी सिखाते हैं आमतौर पर हमारी आदत होती है कि हम दूसरों की कमियाँ और अपनी अच्छाइयाँ तुरंत देख लेते हैं। कहा भी जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मामले में सबसे अच्छा वकील होता है और दूसरों के मामले में सबसे बुरा जज। कबीर हमें इस निम्न मानसिकता से मुक्त कराना चाहते हैं। वे सिखाते हैं कि दूसरों पर कठोर कसौटियों का प्रयोग करने की बजाय खुद पर उनका इस्तेमाल करना चाहिए और अपनी कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने का हौंसला रखना चाहिए। एक कथन में वे बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करते हैं कि-

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझसे बुरा न कोय।''17

किसी भी व्यक्ति के विचार इतने पूर्ण नहीं होते कि उन पर सवाल न उठाए जा सकें। कबीर भी पूर्ण नहीं है। उनके विचारों में कुछ ऐसे पक्ष मौजूद हैं, जिन्हें पढ़कर चिंता होती है। उनके समय में तो उन कमियों पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई, पर आधुनिक काल में, जब हर विचारक कई विचारधाराओं की कसौटियों से परखा जाने लगा है, कबीर की कमजोरी भी खुलकर सामने आने लगी है।

कबीर की चेतना पर सबसे गंभीर प्रश्नचिन्ह नारीवादी विचारकों द्वारा लगाया गया है। कबीर के कई ऐसे पद हैं, जिनमें वे नारी की अनावश्यक निंदा

करते हुए नजर आते हैं। दरअसल, वे मध्यकाल की जिस परंपरा में दीक्षित थे, उसमें महिलाओं को 'माया' समझा जाता था और उन पर आरोप था कि वे पुरुषों का ध्यान भटकाने में लगी रहती हैं। समझ नहीं आता कि कबीर जैसा महातार्किक आदमी ऐसे बेवकूफाना विचारों से कैसे प्रभावित हो गया? आज यह सोचकर आश्चर्य होता है कि कबीरदास ने महिलाओं को कितना-बुरा-भला कहा है उदाहरण के लिए, वे एक दोहे में कहते हैं कि-

''नारी की झाईं पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, जे नित नारी के संग।। '' 18

कबीर की दूसरी सीमा यह है कि वे सबको विनम्र भाषा का प्रयोग करने की सलाह देते हैं, किंतु खुद इतनी आक्रामक भाषा का प्रयोग करते हैं कि सुनने वाला तिलमिला जाए। यह अंतर्विरोध हर जगह तो नहीं दिखता, किन्तु कबीर के कुछ कथनों में जरूर झलकता है-विशेषत: वहाँ, जहाँ वे किसी मुल्ले या पंडे पर आडम्बरों या जातिवादी व्यवहार के कारण प्रहार कर रहे होते हैं। कुछ लोग का मानना है कि इस गुस्से और आक्रामकता के कारण ही कबीर 'कबीर' बन सके।

कबीर की तीसरी सीमा यह है कि वे इस जगत को झूठा घोषित करते हैं। दरअसल, वे शंकराचार्य से प्रभावित थे, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत को मिथ्या कहा था। कबीरदास भी कई स्थानों पर इहलोक को झूठा साबित करते हैं। उदाहरण के लिए, उनका एक कथन है-

''यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े धुलि जाना है। '' 19

कबीर के समय तो यह दृष्टिकोण चल जाता था पर आज नहीं चल पाता। वर्तमान विश्व के अधिकांश लोग सैद्धांतिक तौर पर चाहे मानें या नहीं, पर व्यावहारिक तौर पर समझ चुके हैं कि यह दुनिया ही वास्तविक और अंतिम दुनिया है, इसलिए इसे झूठा मानना और किसी काल्पनिक दुनिया के सपने देखना निरर्थक है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कबीर महान समाज सुधारक थे। जहाँ तक उनके नारी संबंधी या परलोक संबंधी विचार हैं, हमें उनसे प्रभावित नहीं होना चाहिए। क्योंकि वे सत्य धर्म के प्रतिपादक, समन्वयवादी एवं क्रांतिकारी व्यक्ति थे। वे समाज में प्रचलित सभी प्रकार की असमानता बाह्याडम्बर एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जनसाधारण को सरल-जीवन, सत्याचरण, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो सराहनीय कार्य

किया है, उसी के परिणामस्वरूप वे एक उच्चकोटि के 'समाज-सुधारक' कहलाते हैं।

कबीर की सामाजिक चेतना और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता

कबीर मात्र भक्ति-काल के सहज तथा जमीनी भक्त कवि ही नहीं थे, वरन् एक बड़े समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने जाति-पाँति का विरोध कर एक समरस, आडम्बर हीन, सर्वतोभावेन सुखी और समुन्नत मानव-समाज का आदर्श दिया। कबीर ने पुराण-प्रतिपादित ब्रह्मणवादी वर्ण-व्यवस्था, जो कि सम्भव है अपने उत्सकाल में योग्यता और कर्म पर आधारित वर्ग-विभाजन रहा हो, परवर्ती कालों में घोर आडम्बर युक्त, वंश-परम्परा पर आधारित विकृत जाति-प्रथा का रूप धारण कर चुकी थी, का डटकर विरोध किया और एक ऐसे पाखण्ड तथा आडम्बर हीन समाज की स्थापना पर जोर दिया, जिसमें सर्वजन बिना आत्महीनता का शिकार हुए अपनी और सामाजिक उन्नति कर सकें।

उन प्रत्येक महानतम् प्राप्तियों तथा प्रतिमानों को, जो केवल जातिगत आधार पर उच्चवर्गियों की थाती समझी जाती थी और जिनका अनुचित तथा सर्वाधिक लाभ उस विशेष वर्ग या जाति के आडम्बरी और अयोग्य ही उठा पा रहे थे, कबीर ने प्रत्येक वर्ग के कर्मनिष्ठ, योग्य और अधिकारी व्यक्तियों के लिए सुलभ बना दिया। यद्यपि दलित वर्गों के कतिपय अज्ञानी, धूर्त और आतातायी कबीर की भ्रामक व्याख्या करके उस आड़ में बड़बोलेपन से अमानुसिक एवं उच्छृंखलतापूर्ण अभद्र कृत्यों को कर रहे हैं, परन्तु कबीर की यह कतई मंशा नहीं रही है। वे एक समरस समाज की स्थापना के पक्षधर थे, जिसमें बिना किसी ऊँच-नीच के, बिना जातिगत भेद-भाव के वे सारी वरीयताएं सर्वजन हेतु सुलभ हों, जिसके लिए वे योग्य और अधिकारी हों। इस रूप में कबीर ने जाति या वर्ण-व्यवस्था की वंशानुगत अवधारणा का विरोध करके कर्माधारित आडम्बरहीन समाज-दर्शन का पुरजोर समर्थन किया, जिसकी आज भी महती आवश्यकता है। यही कबीर की उपादेयता और प्रासंगिकता है।

उपरोक्त के समर्थन में कबीरदास जी की निम्न रचनाएं द्रष्टव्य हैं–

ऊँचे कुल का जनमिया जे करनी ऊँच न होय। सुबरन कलस सुरा भरा साधू निन्दत सोय।।

हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूद। तुम कैसे बांभन पाण्डे हम कैसे सूद॥
जो तम बांभन बंभनी जाया। आन बाट हवे क्यों नहिं आया॥
जो तम तुरक तुरकिनी जाया। भीतर खतना क्यों न कराया॥

पाखण्ड और आडम्बर पर प्रहार हेतु कबीर के ये दो दोहे ही पर्याप्त हैं:-

पाथर पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहाड़.....
दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय.....

5

कबीर की भक्ति

कबीर की भक्ति कबीर ने अपनी भक्ति में जिस निर्गुण आराध्य का वर्णन किया है वह उपनिषदों की अद्वैती भावना के प्रभाव से प्रभावित है। कबीर की ब्रह्मभावना अधिकांश अद्वैती है, किन्तु कहीं अद्वैत से भिन्न भी है। इसलिये कबीर किसी सिद्धान्त के अनुयायी नहीं न ही प्रस्थापक हैं। उनका ब्रह्म उनके अनुभवों की देन है। कबीर पहले साधक हैं, फिर कवि। वे अपनी भक्ति साधना में जिस-जिस रूप में अपने ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं, उसी रूप में उसे वर्णित करते जाते हैं। वे निज ब्रह्म विचार और आतम साधना में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि कबीर का ब्रह्म कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में हमारे सामने आता है। यह तर्क और किसी दार्शनिक सिद्धान्त से बहुत ऊपर है, बस अनुभवों और अनुभूतियों का विषय है।

कबीर कहते हैं–

वे ईश्वर की अद्वैत सत्ता को स्वीकार करते हैं। वास्तव में उनका प्रभु रोम रोम और सृष्टि के कण-कण में बसा है। वह मन में होते हुए भी दूर दिखाई देता है, किन्तु जब प्रियतम पास ही हो तो उसे संदेश भेजने की क्या आवश्यकता? इसलिये कबीर कहते हैं।

'प्रियतम को पतिया लिखूं, कहीं जो होय बिदेस।
तन में, मन में, नैन में, ताकौ कहा संदेस'

वास्तव में प्रिय के साथ इस संदेश व्यवहार को वे दिखावा मात्र मानते हैं, कृत्रिमता मानते हैं। जब ईश्वर रूपी प्रिय की सत्ता हर स्थान पर विद्यमान हो तो इस दिखावे की आवश्यकता क्या है?

'कागद लिखै सो कागदी, कि व्यवहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखै, जित देखे तित पीव॥'

कबीर ने अपने प्रिय की उपस्थिति उसी प्रकार सर्वत्र मानी है, जिस प्रकार अद्वैत भावना के पोषक प्रतिबिम्बवाद में। वे भी ईश्वर की सर्वव्यापकता को गहराई से अनुभव किया करते थे।

'ज्यूं जल में प्रतिबिम्ब, त्यूं सकल रामहि जानीजै। '

इन दोहों में प्रकाशित उनकी अद्वैत भावना के साथ यह स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार है।

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इहिं तथ कथ्यौ ज्ञानी॥'
'जाके मुंह माथा नहीं, न ही रूप सुरूप।
पुहुप बास ते पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥'

कबीर की निर्गुण भक्ति में साकार ब्रह्म के जो तत्त्व आ गये हैं, वे कोरे तीव्र भक्ति भावना के द्योतक नहीं हैं, अपितु जन मन में साकार स्वरूप की जो उपासना प्रचलित थी, उसका विरोध करते हुए भी कबीर कहीं न कहीं उसके प्रभाव से बच नहीं सके हैं। वास्तव में लोकप्रचलित परम्परा कहीं न कहीं प्रतिबिम्बित हो ही जाती है। कबीर की भक्ति सरस और विलक्षण है, जिसे आप किसी सीमा में नहीं बांध सकते। कबीर ने भक्ति को मुक्ति का एकमात्र साधन माना है।

'भक्ति नसैनी मुक्ति की।'
'क्या जप क्या तप क्या संजम क्या व्रत और क्या अस्नान
जब लगी जुगत न जानिये, भाव भक्ति भगवान॥'

सर्वस्व समर्पण के साथ-साथ अपने अस्तित्त्व को साध्य में लीन करने की उत्कृष्ट भावना कबीर में परिलक्षित होती है। यही कारण है कि वे ईश्वर के गुलाम बनने में भी नहीं हिचकते।

'मैं गुलाम मोहि बेचि गुंसाई।
तन मन धन मेरा राम जी के तांई॥'

ईश्वर सामीप्य की भावना तो उनसे यह तक कहलवा लेती है।

'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।
गले राम की जेवड़ी जित खैंचे तित जाऊँ॥

विरह भी कबीर की भक्ति का एक अंग है।

'मन परतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढ़ंग।
क्या जाणौ उस पीव सूं कैसी रहसि संग॥ '

कबीर काव्य की यह तड़प अद्‌भुत है। ऐसे अलौकिक प्रिय को जब आत्मा नहीं पाती तो उसके वियोग में विचलित रहती है। जब से गुरु ने उस परमात्मा का ज्ञान करवाया है, भक्त तभी से उसके लिये व्याकुल है।

'गूंगा हुआ बावला, बहरा हुआ कान।
पाँऊ थे पंगुल भया, सतगुरु मारा बान॥ '

कबीर के भक्ति व्याकुल मन ने विरह का जो वर्णन किया है, वह इतना मार्मिक तथा स्वाभाविक है कि लगता है कबीर का पौरुषत्व यहाँ समाप्त हो गया है और उनकी आत्मा ने स्त्री रूप में प्रियतम के लिये यह शब्द कहे हैं।

'बिरहनी उभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कह पीव का कबर मिलेंगे आई॥'

जब भक्त का मन विरह से दग्ध हो उठता और प्रिय के वियोग में टूक टूक हुआ जाता है, तब वह विवश हो ईश्वर से यह कह बैठता है।

'कै बिरहणी कूं मीच दै, कै आपा दिखलाए।
आठ पहर का दाझणा, मो पै सहा न जाए॥'

वास्तव में यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है, जो प्रभु प्रियतम के अभाव में भी आत्मा परमात्मा, भक्त भगवान के अटूट प्रेम की उद्घोषणा कर रहा है।

कबीर की भक्ति में निष्काम भाव है, यदि उन्हें प्रभु प्राप्त भी हो जाएं तो उनसे वे किसी कामना सिद्धि की बात नहीं सोचते। उनकी एकमात्र कामना है।

'नैनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारिकै, पिय को लेऊं रिझाय॥ '

भक्ति में कामना के घोर विरोधी थे कबीर।

'जब लगि भगति सकामता तब लगि निष्फल सेव'

इसलिये अन्त समय में भी कबीर ने प्रभु में ध्यान लगाने की बात कही है।

'कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाती।
तेल घटया बाती बुझी, सोवेगा दिन राति॥'

कबीर की भक्ति में पुस्तकीय ज्ञान का कोई महत्व नहीं था। उनका विश्वास था कि ईश्वर में लगायी अटूट लय ही मुक्ति के लिये काफी है। भक्त के लिये तो बस इतना काफी है कि वह विषय वासनाओं से मुक्त हो ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करे।

'पोथि पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥ '
'कबीर पढ़िवा दूर कर, पोथी देय बहाय।
बावन आखर सोध कर, रमैं ममैं चित्त लाय॥'

कबीर की भक्ति में कोई भेदभाव नहीं। भक्ति के द्वार सबके लिये खुले हैं। सबकी रचना उन्हीं पंच तत्त्वों से हुई है और सबका रचयिता वही पिता परमात्मा है।

'जाति-पांति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई॥'

कबीर के अनुसार भक्ति मार्ग पर तो एकमात्र मार्गदर्शक गुरु ही हैं। गुरु के बिना भक्ति मार्ग कौन प्रशस्त करेगा?

'सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाडिया, अनत दिखावन हार॥'

उस पर साधु संगति, जिसकी महिमा का भी कोई बखान नहीं। इसे कबीर ने स्वर्ग से अधिक महत्व दिया है।

'राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय॥'

कबीर की भक्ति अद्‌भुत है, बहुत समर्पित जो कि गंगा के समान पवित्र है, जिसके कई कई पावन घाटों पर जाने कितनी भटकते मन रूपी हिरणों को विश्रान्ति मिलती है।

कबीर का जन्म और विवादों का साया

एक ही ईश्वर में विश्वास रखने वाले कबीर के बारे में कई धारणाएं हैं। उनके जन्म से लेकर मृत्यु तक मतभेद ही मतभेद हैं। उनके जन्म को लेकर भी कई धारणाएं हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से

काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा (Lehartara) ताल के पास फेंक आई. उस बालक को नीरू (Niru) नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। नीरू की पत्नी 'नीमा' (Nima) ने ही बाद में बालक कबीर का पालन-पोषण किया। एक जगह खुद कबीरदास ने कहा है–

"जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि-बनि फिरो उदासी"

कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था में स्वामी रामानंद (Swami Ramananda) के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म की बातें मालूम हुईं।

कबीर का विवाह कन्या 'लोई' के साथ हुआ था। जनश्रुति के अनुसार उन्हें एक पुत्र कमाल तथा पुत्री कमाली थी। कबीर का पुत्र कमाल उनके मत का विरोधी था। जिसके बारे में संत कबीर ने खुद लिखा है–

बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सिमरन छोड़ि के, घर ले आया माल।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे और यह बात उनके एक दोहे से पता चलती है, जो कुछ इस प्रकार से है–

मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

जिस समय कबीर का जन्म हुआ था, उस समय देश की स्थिति बेहद गंभीर थी। जहां एक तरफ मुसलमान शासक अपनी मर्जी के काम करते थे, वहीं हिंदुओं को धार्मिक कर्म-काण्डों से ही फुरसत नहीं थी। जनता में भक्ति-भावनाओं का सर्वथा अभाव था। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले थे। ऐसे समय में संत कबीर ने समाज के कल्याण के लिए अपनी वाणी का प्रयोग किया।

कबीर धर्मगुरु थे। इसलिए उनकी वाणियों का आध्यात्मिक रस ही आस्वाद्य होना चाहिए, परन्तु विद्वानों ने नाना रूप में उन वाणियों का अध्ययन और उपयोग किया है। काव्य-रूप में उसे आस्वादन करने की तो प्रथा ही चल पड़ी है। समाज-सुधारक के रूप में, सर्व-धर्म समन्वयकारी के रूप में, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य-विधायक के रूप में भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई है।

कबीर की वाणी को हिंदी साहित्य में बहुत ही सम्मान के साथ रखा जाता है। दूसरी ओर गुरुग्रंथ साहिब में भी कबीर की वाणी को शामिल किया गया है। कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' (Bijak) नाम से है। बीजक पंजाबी,

राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है। कबीरदास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। कबीर ने शास्त्रीय भाषा का अध्ययन नहीं किया था, पर फिर भी उनकी भाषा में परम्परा से चली आई विशेषताएं वर्तमान हैं।

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्त्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्त्व केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी जानता है, तुलसीदास, परन्तु तुलसीदास और कबीर के व्यक्तित्त्व में बड़ा अन्तर था। यद्यपि दोनों ही भक्त थे, परन्तु दोनों स्वभाव, संस्कार और दृष्टिकोण में एकदम भिन्न थे। मस्ती, फक्कड़ाना स्वभाव और सब कुछ को झाड़-फटकार कर चल देने वाले तेज ने कबीर को हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय व्यक्ति बना दिया है।

एक ईश्वर की धारणा में विश्वास रखने वाले कबीर ने हमेशा ही धार्मिक कर्मकण्डों की निंदा की, सर्व-धर्म समंवय के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत होती है, वह वस्तु कबीर के पदों में सर्वत्र पाई जाती है। कबीरदास एक जबरदस्त क्रान्तिकारी पुरुष थे।

जन्म के बाद कबीर की मृत्यु पर भी काफी मतभेद हैं। कुछ लोग मानते हैं कि कबीर ने मगहर में देह त्याग किया था और उनकी मृत्यु के बाद हिंदुओं और मुस्लिमों में उनके शव को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। हिन्दू कहते थे कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति से होना चाहिए और मुस्लिम कहते थे कि मुस्लिम रीति से हो। इसी विवाद के दौरान जब शव से चादर हटाई गई तो वहां शव की जगह फूल मिले, जिसे हिंदुओं और मुस्लिमों ने आपस में बांटकर उन फूलों का अपने अपने धर्म के अनुसार अंतिम संस्कार किया।

बेशक आज हमारे बीच कबीर नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनाओं ने हमें जीने का नया नजरिया दिया है। ऐसी मान्यता है कि अगर कोई व्यक्ति कबीर के दोहे के अनुसार अपनी जिंदगी को आगे बढ़ाता है तो निश्चय ही वह एक सफल पुरुष बन जाएगा, हर युग का साहित्य अपने समय के समाज से प्रभावित होता है। साहित्य या आध्यात्मिक चेतना के लिए समाज-निरपेक्ष होना संभव नहीं है। कबीर की आध्यात्मिक चेतना अथवा उनकी भक्ति की विशेषता यही है कि यह समाज से जुड़ी हुई है। उनकी भक्ति में सामान्य गृहस्थों के लिए भी स्थान है तथा यह भौतिक जगत की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं करती है। उनकी कविता भी इसी कारण से विशिष्ट है। कबीर की कविता निरीह-शोषित जनता के साथ

खड़ी होती है, उनका स्वर बनती है तथा शोषक सामंत वर्ग का जोरदार ढ़ंग से विरोध भी करती है।

कबीर की कविता अथवा उनकी भक्ति या साधना-पद्धति की सामाजिक प्रासंगिकता पर विचार करने के क्रम में इस बात पर भी विचार करना होगा कि कबीर की भक्ति किन सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रतिफल है? सामाजिक परिवर्तन में उसकी भूमिका क्या है? तथा समाज के लिए उसकी उपयोगिता क्या है?

कबीर मध्ययुगीन संत कवि है। मध्य-युग हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आंदोलन का काल रहा है वहीँ इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रंथकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक उथल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामंत, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहे थे। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो सामंती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़े तेजी से फैलती जा रही थी। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

कबीर निम्न तबके के जुलाहे थे। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का विष-दंश झेलरध था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थे, अतः उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है। -

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करों तलवार की पड़ी रहन दो म्यान'॥

कबीर निर्गुण भक्ति और शंकर के अद्वैत को अपनाया। इन दोनों के लिए ही काफी उच्च ज्ञान तथा बौद्धिकता अनिवार्य है। कबीर न तो ब्राह्मण थे और नहीं पर्याप्त रूप से शिक्षित ही थे, फिर उन्होंने ऐसा मत क्यों चुना?

कबीर उच्च कोटि के मानवतावादी संत थे। प्रारम्भ में बड़े सरल और भावुक रहे होंगे। उनकी सरलता उनमें बची रही, बाद में उनकी अक्खड़ता-फक्कड़ता के रूप में स्थान्तरित हो गई, क्योंकि जो सरल होता है, वही बेबाक होता है, परन्तु उनकी भावुकता के साथ क्या हुआ?

अपने हिंदी साहित्य के इतिहास स्वयं आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि रामानंद जी के प्रभाव के कारण उन्हें हिन्दू रीति-रिवाज आकर्षित करते थे-'वे राम-राम जपा करते और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थे। '

यह संभव है कि बाल्यावस्था में सगुण भक्ति की ओर इनकी रुचि रही हो, परन्तु यदि ऐसा था तो इन्होंने निर्गुण भक्ति क्यों स्वीकार की? रामानंद जी स्वयं सगुणोपासक थे एवं सगुन रामोपासना का उपदेश देते थे।

गंगा तट वाली घटना में भी उन्होंने कबीर से यही कहा था कि 'राम-राम बोलं। उनके इस राम का आशय सगुन राम से था, फिर कबीर की गुरु भक्ति की भावना भी विख्यात है-

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोविन्द दियो बताय।। '
'यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान। '

आखिर क्या कारण था कि रामानंद जी के मन्त्र को भी कबीर ने अपनी मान्यता के अनुसार परिवर्तित करके ही स्वीकार किया?

यदि यह संभव है कि कबीर सगुन भक्ति तथा हिंदू रीति-रिवाजों (भक्ति की पद्धति) के प्रति आकर्षित थे, तब यह भी संभव है कि उनके कार्यों का यथा नाम जप तथा तिलक लेपन आदि का विरोध हुआ हो। हिंदू-मुस्लिम दोनों ने इसका विरोध किया होगा। बालक कबीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा? हिन्दू मुस्लिम, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छूआ-छूत इन सबने कबीर को अंदर से झकझोर दिया। कबीर की भावुकता दब गई तथा उनके स्थान पर भेद-भाव के विरोध के लिए आवश्यक जुझारूपन उनके अंदर विकसित हुआ।

सगुण भक्ति को स्वीकार न करने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह की सगुण भक्ति चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवादी पौराणिकता, सामंती रुढ़िओं और भेद-भाव का पोषण करती है। मानव-मानव में समानता की जो भावना कबीर चाहते थे, वह सगुण भक्ति में संभव नहीं थी। दूसरा कारण मेरे अनुसार कहीं न कहीं यह भी हो सकता है कि इस्लामिक संस्कारों और मान्यताओं के अनुसार सगुण भक्ति इनके अनुकूल न थी।

कबीर मानव मात्र से प्रेम से प्रेम करते थे। इनके लिए सब सामान है, कोई भेद नहीं है, न कोई राजा है, न कोई रंक है, न कोई पंडित है, न कोई मुर्ख, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र सभी उसी परमब्रह्म के अंश हैं, सभी ब्रह्म हैं।

शंकर के अद्वैत को स्वीकार करने के पीछे इनका यह मानव मात्र के प्रति प्रेम तथा उनकी समदृष्टि ही कारण था। इस प्रकार इनकी भक्ति साधना और इनके दार्शनिक विचार सब समाज के द्वारा ही उत्प्रेरित थे।

कबीर एक भक्त के साथ ही समाज सुधारक के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। समाज सुधार के उनके कार्य या उनकी कविता की सामाजिकता का अध्ययन हम निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत करेंगे।

एकता और समन्वय का प्रयास, जाति-पाति का विरोध

कबीर का समाज ऊँच-नीच, सवर्ण-कुवर्ण, ब्राह्मण-शूद्र, शोषक-शोषित, हिन्दू-मुसलमान इत्यादि में बँटा था। समाज का ईश्वर भी बँटा हुआ था हिन्दू-मुसलमान में वैमनस्य बढ़ रहा था।

'संतौ देखहु जग बौराना हिन्दू कहे मोहि राम पियारा तुरक कहे रहिमाना।'

तत्कालीन समाज में ईर्ष्या और द्वेष से भरा वातावरण था, परन्तु कबीर को हिंदू और मुसलमान दोनों ही प्यारे थे। ये तो मानव मात्र से प्रेम करते थे, इनके लिए सब बराबर थे, अतः ये एक ऐसा पंथ बनना चाहते थे, ऐसी साधना पद्धति विकसित चाहते थे, जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार कर सकें। इसीलिए इन्होंने निर्गुण भक्ति का आश्रय लिया तथा राम और रहीम को एक बताकर उस एक सच्चे ईश्वर की आराधना का उपदेश दिया, जो सबसे ऊपर है, जो परमतत्त्व है, परमात्मा है। सामाजिक भेद-भाव का स्वाद इन्होंने स्वाम चखा था। समाज को तोड़ने वाली इन विभेदकारी रूढ़ियों को ये कभी प्रोत्साहित नहीं कर सकते थे। इन्होंने मानव मात्र की एकता पर बल दिया।

'एक बून्द एकै मल-मूतर, एक चाम एक गुदा। एक जोति से सब उत्पन्ना, को बाह्मन को सूदा।। '

इन्होंने बताया कि सब उसी राम के अंश हैं, अन्य सभी भेद माया जनित भ्रम हैं तथा जिन लोगों ने अपने आपको श्रेष्ट घोषित करने का प्रयास किया, उन्हें इन्होंने डाँट भी लगाई-

'ऊंचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय। सुबरन कलश सूरा भरा, साधू निंदै सोय। '

'जो तू बाभन बभनी जाया, आन राह तै क्यों नहीं आया।
जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर खतना क्यों न कराया।।'

इस प्रकार कबीर ने जनता और जनता के ईश्वर को एक कर सामाजिक एकता को बल प्रदान किया।

माध्यम मार्ग का अनुसरण

कबीर की भक्ति माध्यम मार्गी थी। कबीर न तो शरीर का दमन कर घोर तप करने को कहते हैं। और न ही विषय-वासना आदि में रत रहने को कहते हैं। ये जानते थे कि 'यदि शरीर को अधिक कष्ट देकर भगवान का भजन किया गया तो वह अधिक दिनों तक बचेगा नहीं और यदि विषयासक्त होकर भजन किया जाएगा तो मन भजन की और उन्मुख नहीं होगा। ' घोर तप साधारण जनता के लिए संभव भी नहीं था। इसीलिए कबीर ने माध्यम मार्ग का उपदेश दिया। ये स्वयं उच्च कोटि के साधक होकर भी अपना पैतृक कर्म करते रहें। इस तरह इन्होंने न तो धन-संग्रह में ही जी-जान से लग जाने का उपदेश दिया है न ही यही कहा है कि घर-बार छोड़ कर निकम्मे फकीर बन जाओ। इनके अनुसार धन का उतना ही संग्रह करना चाहिए, जिससे परिवार का पालन-पोषण भी हो जाए तथा घर आया अतिथि भी भूखा न जाए। -

साईं इतना दीजिये जा में कुटुंब समाय। .....

आचरण की शुद्धता -कबीर के भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह आचरण की शुद्धता पर बल देता है। कबीर ने सामान्य जनता को सही मार्ग दिखाया। इन्होंने उन्हें बताया कि भक्ति के लिए आचरण की शुद्धता अनिवार्य है। इन्होंने उन्हें सत्य, अहिंसा तथा कर्म का महत्त्व बताया।

'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।'

आचरण की शुद्धता के लिए कबीर ने सद्पुरुषों की संगति को श्रेष्ठतम उपाय बताया है। -

'कबीर संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ। '

बाह्य आडम्बरों का विरोध

कबीर एक सीधें और सच्चे साधक थे, सार-सार को ग्रहण कर थोथा उड़ा देना उनका आदर्श था। साधना में बाह्याडम्बरों का इन्होंने जम कर विरोध किया। बाह्याडम्बरों के विरोध में रचित इनके दोहे काफी व्यंगपूर्ण और प्रभावी हैं।

वे निर्गुण भक्त थे अतः मूर्तिपूजा में उन्हें कोई लाभ दिखता न था। निराकार परमात्मा के स्थान पर पत्थर की मूर्ती उन्हें जँचती न थी। इसीलिए इन्होंने मूर्तिपूजा का जम कर विरोध किया–

'पाथर पूजै हरी मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते तो चक्की भली, पीसि खाय संसार॥'

कबीर आतंरिक साधना पर बल दिया, माला फेरने और तिलक–कंठी धारण करने को व्यर्थ बताया।

'माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
करका मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥ '

हिन्दुओं की ही भाँति इन्होंने इस्लाम की धार्मिक कट्टरता, बाह्याडम्बरों और रूढ़ियों का प्रबल विरोध किया।

'कांकर पाथर जोरि कै, मस्जिद लई बनाय।
ता छड़ी मुल्ला बांगदे, क्या बाहर हुआ खुदाय॥ '

'संक्षिप्त निष्कर्ष– संत कबीर के विचार दीर्घकालीन भारतीय चिंतन शृंखला की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। कबीर के विचार उपनिषदों, भगवान बुद्ध की मान्यताओं, शंकर के विचारों और मध्कालीन सिद्धों की शिक्षाओं के सार हैं। कबीर की साधना पद्धति, उनकी भक्ति और उनके सामाज सुधार के विचार उस समय भी महत्वपूर्ण थे तथा आज भी महत्वपूर्ण हैं। आज भी तमाम ऐसे उपकरण हैं, ऐसे व्यर्थ के कार्य हैं, जिनका मानव के जीवन में कोई महत्व नहीं है, परन्तु मानव है कि अपने जरूरी कार्यों को छोड़ कर उन व्यर्थ के कामों में लगा रहता है। ये कार्य, ये उपकरण और कुछ नहीं माया ही है। हमें इनके बीच ठीक वैसे ही रहना होगा जैसे– कबीर घर–गृहस्थी में होने के बाद भी विरक्त हो कर जीते थे। 'उपयोग उतना ही होना चाहिए, जितना अनिवार्य हो अधिक की लालसा व्यर्थ है', आज के भौतिकवादी विश्व में कबीर के ये विचार और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। समदृष्टि की जो बात कबीर ने कही थी, उन्होंने जो मानव–मानव के बीच अभेद्य की बात कही थी वह आज के समय में प्रासंगिक है।

6

कबीरपंथ

कबीरपंथ कबीर के नाम पर स्थापित मध्यकालीन भारतीय संप्रदाय है। कबीर ने ही इसका प्रवर्तन किया था, यह विवादस्पद है। कबीरपंथी साहित्य से ज्ञात होता है कि संत कबीर ने चतुर्दिक अपने विचारों का प्रचार करने के लिए अपने चार प्रमुख शिष्यों-'चत्रभुज', 'बंके जी', 'सहते जी' और 'धर्मदास' को भेजा था। प्रथम तीन शिष्यों के संबंध में कोई विवरण प्राप्त नहीं है। धर्मदास के विषय में अवश्य यह सूचना मिलती है कि उन्होंने कबीर पंथ की 'धर्मदासी' अथवा 'छत्तीसगढ़ी' शाखा की स्थापना की थी। इस समय जो अन्य संस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं, वे भी कबीर अथवा उनके किसी शिष्य अथवा किसी परवर्ती व्यक्ति के नाम से ही संबद्ध हैं। कबीर के नाम पर ही द्वादश पंथों का भी उल्लेख मिलता है। इनमें कबीर के प्रति श्रद्धा व्यक्ति की गई है। कुछ लोग इन द्वाद्वश पंथों को शुद्ध कल्पना मानते हैं।

शाखाएँ

कबीरपंथ की विभिन्न संस्थाओं के विभाजन के संबंध में दो मत मिलते हैं। एक मत के अनुसार कबीरपंथ की दो प्रमुख शाखाएँ बताई गई हैं। प्रथम शाखा का केंद्र 'कबीरचौरा' (काशी) है। इसकी एक उपशाखा मगहर में है। दूसरा केंद्र छत्तीसगढ़ के अंतर्गत है, जिसकी स्थापना धर्मदास ने की थी। इसकी

भी अनेक शाखाएँ, उपशाखाएँ बताई गई हैं। दूसरे मत के अनुसार कबीरपंथ के नाम से चलने वाली संस्थाओं का विभाजन इस प्रकार है–

(क) स्वतंत्र रूप से स्थापित कबीरपंथ की शाखाएँ, जिनका संबंध ऐसे व्यक्तियों से जोड़ा जाता है, जो कबीर के प्रमुख शिष्यों में से थे–

1. रामकबीर पंथ
2. फतुहा मठ
3. बिद्दूपुर मठ
4. भगताही शाखा
5. कबीरचारा (काशी)
6. छत्तीसगढ़ी या धर्मदासी शाखा

(ख) छत्तीसगढ़ी शाखा से संबंध विच्छेद करके पृथक् मठ के रूप में स्थापित शाखाएँ इस प्रकार हैं–

1. कबीरचौरा जगदीशपुरी
2. हरकेसर मठ
3. कबीर-निर्णय-मंदिर (बुरहानपुर)
4. लक्ष्मीपुर मठ

शेष प्रमुख शाखाओं में से कुछ ऐसा है, जिन्हें उपर्युक्त स्वतंत्र शाखाओं में से किसी न किसी की उपशाखा मात्र कह सकते हैं। आचार्य गद्दी, बड़ैया और महादेव मठ, रुसड़ा जैसी संस्थाएँ कबीरपंथी विचारधारा द्वारा प्रभावित कही जा सकती हैं। मध्यकालीन जाति-उपजाति-विकास के अनुसार ही कबीर के नाम से प्रचलित 'पनिका' कबीरपंथियों तथा कबीरशिंयों का ऐसे समूह के रूप में विकास हो गया है, जिसे हम जुग्गी जैसी विशिष्ट जाति कह सकते हैं।

विस्तार

गुजरात में प्रचलित रामकबीर पंथ के प्रवर्तक कबीर शिष्य 'पद्मनाभ' तथा पटना में 'फतुहा मठ' के प्रवर्तक तत्त्वाजीवा अथवा गणेशदास बताए जाते हैं। इसी प्रकार मुजफ्फरपुर जिलांतर्गत कबीरपंथ की बिद्दूरपुर मठवाली शाखा की स्थापना कबीर के शिष्य जागूदास ने की थी। बिहार में सारन जिले के अंतर्गत धनौती में स्थापित भगताही शाखा के प्रवर्तक कबीर शिष्य भागोदास वा भगवान गोसाई कहे जाते हैं। भगताही शाखा में भक्ति भावना ही प्रधान है, न कि ब्राह्मोपचार। सुरतगोपाल द्वारा प्रवर्तित काशीस्थ कबीरचौरा शाखा अन्य शाखाओं

से प्राचीन समझी जाती है, लेकिन कुछ लोग इसमें संदेह भी व्यक्ति करते हैं। काशी स्थित लहरतारा, बस्ती जिले में स्थित मगहर कबीरबाग (गया) में इसकी उपशाखाएँ बताई जाती हैं। कबीरपंथ की अन्य शाखाओं की तुलना में छत्तीसगढ़ी शाखा अधिक व्यापक है। इस शाखा द्वारा पर्याप्त सांप्रदायिक साहित्य भी निर्मित हुआ है। छत्तीसगढ़ी शाखा की अनेक उपशाखाएँ मांडला, दामाखेड़ा, छतरपुर आदि स्थानों में स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त कबीरपंथ की अनेक अन्य शाखाओं, उपशाखाओं का भी उल्लेख मिलता है।

कल्पनाएँ

कबीरपंथी संस्थाओं के अस्तित्त्व में आ जाने पर उनमें अनेक प्रकार की पौराणिक कथाओं की सी कल्पना करके कबीर को विशेष प्रकार का अलौकिक रूप दे दिया गया। साथ ही संसार की सृष्टि, विनाश, विभिन्न लोकों की भी कल्पनाएँ कर ली गई हैं। इस प्रकार के कबीरपंथी साहित्य के अधिकांश भाग का, जो पौराणिक कथाओं, कमाकांड अथवा गोष्ठियों, संवादों आदि से संबद्ध है, निर्माण छत्तीसगढ़ी शाखा के अनुयायियों द्वारा किया गया। इसके अंतर्गत 'सुखनिधान, 'गुरुमहात्म्य, 'अमरमूल', 'गोरखगोष्ठी', 'अनुरागसागर', 'निरंजनबोध' और 'कबीर मंसूर' जैसी रचनाओं की गणना की जाती है। इस प्रकार के साहित्य निर्माण द्वारा कबीर मूल रूप वस्तुतः तिरोहित हो गया और जिस संप्रदायवाद, कर्मकांड, बाह्यडंबर आदि का उन्होंने विरोध किया था, उन सबका विधिवत प्रचार, प्रसार कबीरपंथी संस्थाओं द्वारा होने लगा।

प्रमुख ग्रंथ

कबीर का प्रमुख धर्मस्थान कबीरचौरा आज तक प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक मठ और कबीरदास का मन्दिर है, जिसमें उनका चित्र रखा हुआ है। देश के विभिन्न भागों से सहस्रों यात्री यहाँ पर दर्शन करने आते हैं। इनके मूल सिद्धान्त निम्नांकित ग्रन्थों में पाए जाते हैं-

ब्रह्मनिरूपण, ईसमुक्तावली, कबीरपरिचय की साखी, शब्दावली, पद, साखियाँ, दोहे, सुखनिधान, गोरखनाथ की गोष्ठी, कबीरपंजी, वलक्क की रमैनी, रामानन्द की गोष्ठी, आनन्द रामसागर, अनाथमंगल, अक्षरभेद की रमैनी, अक्षरखण्ड की रमैनी, अरिफनामा कबीर का, अर्जनामा कबीर का, आरती कबीरकृत, भक्ति का अंग, छप्पय, चौकाघर की रमैनी, मुहम्मदी बानौ, नाम

माहात्म्य, पिया पहिचानवे को अंग, ज्ञानगुदरी, ज्ञानसागर, ज्ञानस्वरोदय, कबीराष्टक, करमखण्ड की रमैनी, पुकार, शब्द अनलहक, साधकों के अंग, सतसंग को अंग, स्वासगुज्जार, तीसा जन्म, कबीर कृत जन्मबोध, ज्ञानसम्बोधन, मुखहोम, निर्भयज्ञान, सतनाम या सतकबीर बानी, ज्ञानस्तोत्र, हिण्डोरा, सतकबीर, बन्दीछोर, शब्द वंशावली, उग्रगीता, बसन्त, होली, रेखता, झूलना, खसरा, हिण्डोला, बारहमासा, चाँचरा, चौतीसा, अलिफनामा, रमैनी, बीजक, आगम, रामसार, सोरठा कबीरजी कृत, शब्द पारखा और ज्ञानबतीसी, रामरक्षा, अठपहरा, निर्भयज्ञान, कबीर और धर्मदास की गोष्ठी आदि।

एकेश्वरवादी

कबीरदास ने स्वयं ग्रन्थ नहीं लिखे, केवल मुख से भाखे हैं। इनके भजनों तथा उपदेशों को इनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया। इन्होंने एक ही विचार को सैकड़ों प्रकार से कहा है और सबमें एक ही भाव प्रतिध्वनित होता है। ये रामनाम की महिमा गाते थे, एक ही ईश्वर (एकेश्वरवाद) को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मन्दिर आदि को नहीं मानते थे। अहिंसा, मनुष्य मात्र की समता तथा संसार की असारता को इन्होंने बार-बार गया है। ये उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्मा को मानते थे और साफ कहते थे कि वही शुद्ध ईश्वर है, चाहे उसे राम कहो या अल्ला। ऐसी दशा में इनकी शिक्षाओं का प्रभाव शिष्यों द्वारा परिवर्तन से उल्टा नहीं जा सकता था। थोड़ा-सा उलट-पुलट करने से केवल इतना फल हो सकता है कि रामनाम अधिक न होकर सत्यनाम अधिक हो। यह निश्चित बात है कि ये रामनाम और सत्यनाम दोनों को भजनों में रखते थे। प्रतिमापूजन इन्होंने निन्दनीय माना है। अवतारों का विचार इन्होंने त्याज्य बताया है। दो-चार स्थानों पर कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनसे अवतार महिमा व्यक्त होती है।

मत-विरोधाभास

कबीर के मुख्य विचार उनके ग्रन्थों में सूर्यवत् चमक रहे हैं, किन्तु उनसे यह नहीं जान पड़ता कि आवागमन सिद्धान्त पर वे हिन्दू मत को मानते थे या मुसलमान मत को। अन्य बातों पर कोई वास्तविक विरोध कबीर की शिक्षाओं में नहीं दिखता। कबीर साहब के बहुत-से शिष्य उनके जीवन काल में ही हो गए थे। भारत में अब भी आठ-नौ लाख मनुष्य कबीरपंथी हैं। इनमें मुसलमान

थोड़े ही हैं और हिन्दू बहुत अधिक हैं। कबीरपंथी कण्ठी पहनते हैं, बीजक, रमैनी आदि ग्रन्थों के प्रति पूज्य भाव रखते हैं। गुरु को सर्वोपरि मानते हैं।

निर्गुणमार्गी पंथ

निर्गुण-निराकारवादी कबीरपंथी के प्रभाव से ही अनेक निर्गुणमार्गी पंथ चल निकले। यथा-

नानकपंथ पंजाब में, दादूपन्थ जयपुर (राजस्थान) में, लालदासी अलवर में, सत्यनामी नारनौल में, बाबालाली सरहिन्द में, साधुपंथ दिल्ली के पास, शिवनारायणी गाजीपुर में, गरीबदासी रोहतक में, मलूकदासी कड़ा (प्रयाग) में, रामसनेही राजस्थान में। कबीरपंथ को मिलाकर इन ग्यारहों में समान रूप में अकेले निर्गुण निराकार ईश्वर की उपासना की जाती है। मूर्तिपूजा वर्जित है, उपासना और पूजा का काम किसी भी जाति का व्यक्ति कर सकता है। गुरु की उपासना पर बड़ा जोर दिया जाता है। इन सबका पूरा साहित्य हिन्दी साहित्य में है। राम नाम, सत्यनाम अथवा शब्द का जप और योग इनका विशेष साधन है। व्यवहार में बहुत से कबीरपंथी बहुदेववाद, कर्म, जन्मान्तर और तीर्थ इत्यादि भी मानते हैं।

7

कबीर ग्रंथावली

काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। अवसर के उचित उपयोग अनभिज्ञ और कर्मठता के उदासीन रहने वाली हिंदू जाति को धर्मजन्य दयालुता ने उसे दासता के गर्त में ढ़केल दिया था। उसका शूरवीरत्व उसके किसी काम न आया। वीरता के साथ-साथ वीरगाथाओं और वीरगीतों की अंतिम प्रतिध्वनि भी रणथंभौर के पतन के साथ ही विलीन हो गयी।

शहाबुद्दीन गोरी (मृत्यु सं. 1263) के समय से ही इस देश में मुसलमानों के पाँव जमने लग गये थे, उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं. 1263-1273) ने गुलाम वंश की स्थापना कर पठानी सल्तनत और भी दृढ़ कर दी। भारत की लक्ष्मी पर लुब्ध मुसलमानों का विकराल स्वरूप, जिसे उनकी धर्मांधता ने और भी अधिक विकराल बना दिया था, अलाउद्दीन खिलजी (सं. 1352-1372) के समय में भली-भाँति प्रकट हुआ। खेतों में खून और पसीना एक करने वाले किसानों की कमाई का आधे से अधिक अंश भूमिकर के रूप में राजकोष में जाने लगा। प्रजा दाने-दाने को तरसने लगी। सोने-चाँदी की तो बात ही क्या, हिन्दुओं के घरों में ताँबे, पीतल की थाली, लोटों तक का रहना मुलतान को खटकने लगा। उनका घोड़े की सवारी करना और अच्छे कपड़े पहनना महान् अपराधों में गिना जाने लगा। नाममात्र के अपराध के लिए भी किसी की खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरवा देना एक साधारण बात थी।

अलाउद्दीन खिलजी के लड़के कुतुबुद्दीन मुबारक (सं. 1373-1377) के शासनकाल में जब देवगिरि का राजा हरपाल बन्दी करके दिल्ली लाया गया, तब उसकी यही दशा हुई। मन्दिरों को गिराकर उसके स्थान पर मस्जिदें बनाने का लग्गा तो बहुत पहले ही लग चुका था, अब स्त्रियों के मान और पतिव्रता की रक्षा करना भी कठिन हो गया। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन की दो चढ़ाइयाँ केवल अतुल सुंदरी पद्मिनी की ही प्राप्ति के लिए हुई, अंत में गढ़ के टूट जाने और अपने पति भीमसी के वीरगति पाने पर पुण्य प्रतिमा महारानी पद्मिनी ने अन्य वीर क्षत्रणियों के साथ अपने मान की रक्षा के लिए अग्निदेव के क्रोड़ में शरण ली और जौहर करके हिंदू जाति का मस्तक ऊँचा किया।

तुगलक वंश के अधिकार रूढ़ होने पर भी ये कष्ट कम नहीं हुए, वरन् मुहम्मद तुगलक (सं. 1382-1408) की ऊटपटाँग व्यवस्थाओं से और भी बढ़ गये। समस्त राजधानी, जिसमे नवजात शिशु से लेकर मरणोन्मुख वृद्ध तक थे, दिल्ली से लाकर दौलताबाद में बसाई गयी, परंतु जब वहाँ आने से अधिक लोग मर गये, तब सबको फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गयी। हिंदू जाति के लिए जीवन धीरे-धीरे एक भार-सा होने लगा, कहीं से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारों ओर निराशा और निरवलम्बता का अंधकार छाया हुआ था।

हिंदू रक्त ने खुसरो की नसों में उबलकर हिंदू राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया तो था, (वि. सं. 1308) पर वह सफल न हो सका। इसके अनंतर सारी आशाएँ बहुत दिनों के लिए मिट्टी में मिल गयी। तैमूर के आक्रमण ने देश को जहाँ-तहाँ उजाड़ कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। हिंदू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गये। विपत्ति की चरम सीमा तक पहुँचकर मनुष्य पहले तो परमात्मा की ओर ध्यान लगाता है और अनेक कष्टों से त्रण पाने की आशा करता है, पर जब स्थिति में सुधार नहीं होता, तब परमात्मा की भी उपेक्षा करने लगता है, उसके अस्तित्त्व पर उसका विश्वास ही नहीं रह जाता।

कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत ही कठिन हो जाता, परंतु कबीर ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिए जनता इस समय तैयार नहीं थी।

मूर्तियों की अशक्तता वि.सं. 1081 में बड़ी स्पष्टता से प्रगट हो चुकी थी, जब कि मुहम्मद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओं को देखते-देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमें से हजारों को तलवार के घाट उतारा था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आने वाले और ग्राह से उसकी रक्षा करने वाले सगुण भगवान जनता के घोर संकटकाल में भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढ़रपुर के भक्तशिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी, लोगों ने उनका वैसा अनुकरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर का कियाय अंत में उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा।

उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण शक्ति का भली-भाँति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभास मात्र मिल सकता था, पर प्रबल जलधार में बहते हुए मनुष्य के लिए यह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की है, जो उसकी रक्षा के लिए तत्परता न दिखलाए, पर उसकी ओर बहकर आता हुआ एक तिनका भी उसके हृदय में जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का सहारा पाने के लिए वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा यही आशा भारतीय जनता के हृदय में उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी, यद्यपि सहायता की आशा से आगे बढ़े हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लाकर सर्वथा निरापद कर सकी।

रामभक्ति ने न केवल सगुण कृष्णभक्ति के समान जनता की दृष्टि जीवन के आनन्दोल्लासपूर्ण पक्ष की ओर ही लगाई, प्रत्युत आनंदविरोधिनी मांगलिक शक्तियों के संहार का विधान कर दूसरे पक्ष में भी आनंद की प्राणप्रतिष्ठा की। पर इससे जनता पर होने वाले कबीर के उपकार का महत्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्णभक्ति अथवा तुलसी की रामभक्ति आँखें मूँदकर ग्रहण कर लेते?

सारांश यह है कि कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ, जब कि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नहीं

रह गयी थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गयी थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था। यद्यपि धर्मज्ञ तत्त्वज्ञों ने सगुण उपासना से आगे बढ़ते-चढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुँचने का सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तव में यह तत्त्व बुद्धिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय सगुण उपासना की निःसारता का जनता को परिचय मिल चुका था और उस पर से उनका विश्वास भी हट चुका था। अतएव कबीर को अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुण उपासक थे। अतएव उनसे मिलते-जुलते पथ पर लगाकर कबीर ने हिंदू जनता को संतोष और शांति प्रदान करने का उद्योग किया। यद्यपि उस उद्योग में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीर के निर्गुणवाद में तुलसी और सूर के सगुणवाद के लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरी भारत के भावी धर्ममय जीवन के लिए उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत बना दिया।

(शीर्ष पर वापस)

भक्त संतों की परंपरा

जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे, वह समय ही भक्ति की लहर का था। उस लहर को बढ़ाने के प्रबल कारण भी प्रस्तुत थे। मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। हिंदू जनता का नैराश्य दूर करने के लिए भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिंदू और मुसलमान भक्त संतों की परंपरा विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक ऐसे सामान्य भक्तिमार्ग का विकास गर्भित था, जिससे परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता था और जिसका मूलाधार भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्मभेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनों के एक विचित्र मिश्रण के रूप में निर्गुण भक्तिमार्ग चल पड़ा। रामानंदजी के बारह शिष्यों में से कुछ इस मार्ग के प्रवर्तन में प्रवृत्त हुए, जिनमें से कबीर प्रमुख थे। शेष में सेना, धना, भवानंद, पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा, जितना कबीर का। नरहर्यानंदजी ने अपने शिष्य गोस्वामी तुलसीदास को प्रेरित करके उनके कर्तृत्व से सगुण रामभक्ति का एक और ही स्रोत प्रवाहित कराया।

मुसलमानों के आगमन से हिंदू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पददलित शूद्रों की दृष्टि में उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसाय ने उनमें कोई भेद नहीं डाला है, न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले, जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवोत्थित भक्तिरंग में सम्मिलित होकर हिंदू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गयी। रामानंदजी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे, परंतु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता-नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के ही समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुईं। रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पद्मावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्तसंतों में से हुईं। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अन्दर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदासजी भी जो मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए। ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री-पुरुष के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है। स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित् ही किसी ने की हो, परंतु पति-पत्नी की भाँति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है।

कबीर इस निर्गुण भक्तिप्रवाह के प्रवर्तक हैं, परंतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गये थे। नामदेव का नाम कबीर ने शुक, उद्धव, शंकर आदि ज्ञानियों के साथ लिया है-

जागे सुक ऊधव अकूर हणवंत जागे लै लँगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामाँ जैदेव॥

अक्रूर, हनुमान और जयदेव की गिनती ज्ञानियों (जाग्रतों) में कैसे हुई, यह नहीं कह सकते। नामदेव जी जाति के दर्जी थे और दक्षिण के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। पंढ़रपुर में विठोबाजी का मंदिर है।

ये उनके बड़े भक्त थे। पहले ये सगुणोपासक थे, परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुणभक्ति की ओर हो गया, जैसा उनके गायनों के नीचे दिए उदाहरणों से पता चलेगा–

(क) दशरथ राय नंद राजा मेरा रामचन्द्र,
प्रणवै नामा तत्त्व रस अमृत पीजै
× × ×
'धनि–धनि मेघा रोमावली। धनि–धनि कृष्णा औढ़े काँवली।
धनि–धनि तू माता देवकी। जिह घर रमैया कमलापति।
धनि–धनि बनखंड बृंदावना। जहँ खेलै श्रीनारायना।
बेनु बजावै गोधन चारैं। नामे का स्वामी आनंद करै।
(ख) 'पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत लंगत जाती थी।
पांडे तुम्हारा महादेव धौले बलद चढ़ा आवत देखा था।
रावन सेंती सरवर होई घर की जोय गँवाई थी।

कबीर के पीछे तो संतों की मानो बाढ़ सी आ गयी और अनेक मत चल पड़े। पर सब पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। नानक, दादू, शिवनारायण, जगजीवनदास आदि जितने प्रमुख संत हुए, सबने कबीर का अनुकरण किया और अपना–अपना अलग मत चलाया। इनके विषय की मुख्य बातें ऊपर आ गयी हैं, फिर भी कुछ बातों पर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

सबने नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा गाई है और मूर्तिपूजा, अवतारवाद तथा कर्मकांड का विरोध किया है, तथा जाति–पाँति का भेदभाव मिटाने का प्रयत्न किया है, परंतु हिंदू जीवन में व्याप्त सगुण भक्ति और कर्मकांड के प्रभाव से इनके परिवर्तित मतों के अनुयायियों द्वारा वे स्वयं परमात्मा के अवतार माने जाने लगे हैं और उनके मतों में भी कर्मकांड का पाखंड घुस गया है। कई मतों में केवल द्विज लिये जाते हैं। केवल नानक देवजी का चलाया सिक्ख संप्रदाय ही ऐसा है, जिसमें जाति–पाँति का भेद नहीं आने पाया, परंतु उसमें भी कर्मकांड की प्रधानता हो गयी है और ग्रंथसाहब का प्रायः वैसा ही पूजन किया जाता है जैसा मूर्तिपूजक मूर्ति का करते हैं। कबीरदास के मनगढ़ंत चित्र बनाकर उनकी पूजा कबीरपंथी मठों में भी होने लग गयी है और सुमिरनी आदि का प्रचार हो गया है।

यद्यपि आगे चलकर निर्गुण संत मतों का वैष्णव संप्रदायों से बहुत भेद हो गया, तथापि इसमें संदेह नहीं की संतधारा का उद्‌गम भी वैष्णव भक्ति रूपी स्रोत से ही हुआ है। श्रीरामानुज ने संवत् 1144 में यादवाचल पर नारायण की मूर्ति स्थापित करके दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रवाह चलाया था पर उनका भक्ति का आधार ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद था, उनका अद्वैत विशिष्टाद्वैत हुआ। गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया, जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पता लगेगा कि संत धारा अधिकतर ज्ञानमार्ग के ही मेल में रही, पर उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्यदेव और उत्तर भारत में वल्लभाचार्यजी के प्रभाव से भक्ति के लिए परमात्मा के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गयी, यद्यपि सिद्धांत रूप में ज्ञानमार्ग का त्याग नहीं किया गया और तो और तुलसीदासजी तक ने ज्ञानमार्ग की बातों का निरूपण किया है, यद्यपि उन्होंने उन्हें गौणस्थान दिया है।

संतों में भी कहीं-कहीं अनजान में सगुणवाद आ गया है और विशेषकर कबीर में, क्योंकि भक्ति गुणों का आश्रय पाकर ही हो सकती है। शुद्ध ज्ञानाश्रयी उपनिषदों तक में उपासना के लिए ब्रह्म में गुणों का आरोप किया गया है। फिर भी तथ्य की बात यह जान पड़ती है कि वैष्णव संप्रदाय ने आगे चलकर व्यवहार में सगुण भक्ति का आश्रय लिया, तब भी संत मतों ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति ही से अपना संबंध रखा।

यहाँ पर यह कह देना उचित जँचता है कि कबीर सारतः वैष्णव थे। अपने आपको उन्होंने वैष्णव तो कहीं नहीं कहा है, परंतु वैष्णव की जितनी प्रशंसा की है, उससे उनकी वैष्णवता का बहुत पुष्ट प्रमाण मिलता है-

मेरे संगी द्वै जणा एक वैष्णव एक राम।
वे हैं दाता मुक्ति का वे सुमिरावै नाम॥
कबीर धनि ते सुंदरी जिनि जाया वैसनौं पूत।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत॥
साकत बाभँण मति मिलै बेसनौं मिलै चँडाल।
अंकमाल दे भेंटिए मानौ मिलै गोपाल॥

शाक्तों की निंदा के लिए यह तत्परता उनकी वैष्णवता का ही फल है। शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है-

साकत सुनहा दूनो भाई, एक नीदै एक भौंकत जाई।

जो कुछ संदेह उनकी वैष्णवता में रह जाता है, वह रामानंद जी को गुरु बनाने की उनकी आकुलता से दूर हो जाना चाहिए। अन्य वैष्णवों में और उनमें

जो भेद दिखाई देता है, उसका कारण, जैसा कि हम आगे चलकर बतायेंगे, उनके सिद्धांत और व्यवहार में भेद न रखने का फल है।

कबीरदास के जीवन चरित्र के संबंध में तथ्य की बातें बहुत कम ज्ञात हैं, यहाँ तक कि उनके जन्म और मरण के संवतों के विषय में भी अब तक कोई निश्चित बातें नहीं ज्ञात हुई हैं। कबीरदास के विषय में कालनिर्णय लोगों ने जो कुछ लिखा है, सब जनश्रुति के आधार पर हैं। इनका समय भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है। डॉ. हंटर ने इनका जन्म संवत् 1437 में और विल्सन साहब ने मृत्यु सं. 1505 में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट के अनुसार इनका जन्म 1497 में और मृत्यु संवत् 1575 में हुई। कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है–

चौदह सौ पचपन साल भए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए।।
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गये।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए।।

यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है। इसके अनुसार कबीरदास का जन्म लोगों ने संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को माना है, परंतु गणना करने से संवत् 1455 में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् 1456 निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'चौदह सौ पचपन साल गये, अर्थात् उस समय तक संवत् 1455 बीत गया था।

ज्येष्ठ मास वर्ष के आरंभिक मासों में है, अतएव उसके लिए चौदह सौ पचपन साल गये लिखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्षारंभ में नवीन संवत् लिखने का उतना अभ्यास नहीं रहता। संवत् 1456 में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चन्द्रवार को ही पड़ती है। अतएव यही संवत् कबीर के जन्म का ठीक संवत् जान पड़ता है।

इनके निधन के संबंध में दो तिथियाँ प्रसिद्ध हैं–

1. संवत् पन्द्रह सौ और पाँच मौ मगहर कियो गमन।
   अगहन सुदी एकादशी, मिले पवन में पवन।।
2. संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
   माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन।।

एक के अनुसार इनका परलोकवास संवत् 1505 में और दूसरे के अनुसार 1575 में ठहरता है। दोनों तिथियों में 70 वर्ष का अंतर है। वार न दिए रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियों की जाँच नहीं की जा सकती।

डॉक्टर फ्यूर्र ने अपने 'मानुमेंटल एंटीक्विटीज ऑफ दि नार्थ-वेस्टर्न प्रोविंसेज' नामक ग्रंथ में लिखा है कि बस्ती जिले के मगहर ग्राम में, आमी नदी के दक्षिण तट पर, कबीरदासजी का रौजा है, जिसे सन् 1450 (संवत् 1507) में बिजली खाँ ने बनवाया और जिसका जीर्णोद्धार सन् 1567 (संवत् 1624) में नवाब फिदाई खाँ ने कराया। यदि ये संवत् ठीक हैं तो कबीर की मृत्यु संवत् 1507 के पहले ही हो चुकी थी। इस बात को ध्यान में रखकर देखने से 1505 ही इनका निधन संवत् ठहरता है और इनका जन्म संवत् 1456 मान लेने से इनकी आयु केवल 49 वर्ष की ठहरती है। मेरा अनुमान था कि डॉक्टर फ्यूर्र ने मगहर के रौजे के बनने तथा जीर्णोद्धार के संवत् उसमें खुदे किसी शिलालेख के आधार पर दिए होंगे। इस अनुमान से मैं बहुत प्रसन्न था कि इस शिलालेख के आधार पर कबीरजी का समय निश्चित हो जायेगा, पर पूछताछ करने पर पता लगा कि वहाँ कोई शिलालेख नहीं है। डॉक्टर साहब ने जिस ढ़ंग से संवत् दिए हैं, उससे तो यही जान पड़ता है कि उनके पास कोई आधार अवश्य था, परंतु जब तक उस आधार का पता नहीं लगता, तब तक मैं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इन संवतों को निश्चित मानने में असमर्थ हूँ, और भी कई बातें हैं, जिनसे इन संवतों को अप्रामाणिक मानने को ही जी चाहता है। इन पर आगे विचार किया जाता है।

यह बात प्रसिद्ध है कि कबीरदास सिकंदर लोदी के समय में हुए थे और उसके कोप के कारण ही उन्हें काशी छोड़कर जाना पड़ा था। सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सन् 1517 (संवत् 1574) से सन् 1526 (संवत् 1583) तक माना जाता है। इस अवस्था में यदि कबीर का निधन संवत् 1505 मान लिया जाए तो उनका सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान रहना असंभव सिद्ध होता है।

गुरु नानकदेवजी ने कबीर की अनेक साखियों पर पदों को आदि-ग्रंथ में उद्धृत किया है, गुरु नानकजी का जन्म संवत् 1526 में और मृत्यु संवत् 1596 में हुई रेवरंड वेस्टकाट लिखते हैं कि जब नानक 27 वर्ष के थे, तब कबीरदासजी से उनकी भेंट हुई थी। नानकदेवजी पर कबीरदास का इतना स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है कि इस घटना को सत्य मानने की प्रवृत्ति होती है, जिससे

कबीर का संवत् 1556 में वर्तमान रहना मानना पड़ता है, परंतु संवत् 1505 में कबीर की मृत्यु मानने से यह घटना असंभव हो जाती है।

जिन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन हुआ है, उनमें से एक संवत् 1561 की लिखी है। यदि कबीरदास की मृत्यु 1505 में हुई तो यह प्रतिलिपि उनकी मृत्यु के 56 वर्ष पीछे तैयार की गयी होगी। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदासजी के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदासजी ने संवत् 1521 में, जब कि कबीरदासजी की आयु 65 वर्ष की थी, अपने गुरु के वचनों का संग्रह किया था। जिस ढ़ंग से कबीरदासजी की वाणी का संग्रह इस प्रति में किया गया है, उसे देखकर यह मानना पड़ेगा कि यह पहला संकलन नहीं था, वरन् अन्य संकलनों के आधार पर पीछे से किया गया था, अथवा कोई आश्चर्य नहीं कि धर्मदास के संग्रह के ही आधार पर इसका संकलन किया गया हो।

टिप्पणी– ग्रंथसाहब में कबीरदास की बहुत सी साखियाँ और पद दिए हैं। उनमें से बहुत से ऐसे हैं, जो सं. 1561 की हस्तलिखित प्रति में नहीं हैं। इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् 1591 वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के 100 वर्ष के अन्दर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदासजी के नाम से प्रचलित हो गयी थीं, जो कि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन संवत् 1505 में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनन्तर 14 वर्ष तक कबीरदासजी जीवित रहे हों और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों, जो ग्रंथसाहब में सम्मिलित कर लिए गये हों।

इस ग्रंथावली (पुस्तक संस्करण) में कबीरदासजी के दो चित्र दिए गये हैं–एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का। पहला चित्र कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा मुझे कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है। मिलान कराने से दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के नहीं मालूम पड़ते, दोनों की आकृतियों में बड़ा अंतर है। यदि दोनों नहीं तो इनमें से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा, दोनों ही अप्रामाणिक हो सकते हैं, परंतु श्रीयुत युगलानंदजी वृद्धावस्थावाले चित्र के लिए अत्यंत प्रामाणिकता का दावा करते हैं, जो 49 वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्ति का ही हो सकता है। नहीं कह सकते कि यह दावा कहाँ तक साधार और सत्य है, परंतु यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि कबीरदासजी की मृत्यु 1505 के बहुत पीछे हुई।

इन सब बातों पर एक साथ विचार करने से यही संभव जान पड़ता है कि कबीरदासजी का जन्म 1456 में और मृत्यु संवत् 1575 में हुई होगी। इस हिसाब से उनकी आयु 119 वर्ष की होती है, जिस पर बहुत लोगों को विश्वास करने की प्रवृत्ति न होगी, परंतु जो इस युग में भी असंभव नहीं है।

(शीर्ष पर वापस)

माता-पिता

यह कहा जा चुका है कि कबीरदासजी के जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती, क्योंकि उन सबका आधार जनसाधारण और विशेषकर कबीरपंथियों में प्रचलित दंतकथाएँ हैं। कहते हैं कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे, जो स्वामी रामानंदजी के बड़े भक्त थे। उनकी एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन वे स्वामीजी के आश्रम पर गये। प्रणाम करने पर स्वामीजी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण देवता ने चौंककर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया, तब स्वामीजी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता है, परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा।

आशीर्वाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकापवाद के भय से उसने उसे लहर तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात् नीरू नाम का एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दम्पति के कोई पुत्र न था। बालक का रूप पुत्र के लिए लालायित दम्पति के हृदय में चुभ गया और वे इसी बालक का भरण-पोषण कर पुत्र वाले हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवद्भक्त कबीर हुआ।

कबीर का विधवा ब्राह्मण कन्या का पुत्र होना असंभव नहीं, किंतु स्वामी रामानंदजी के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से ही पीछे से जोड़ी गयी जान पड़ती है, जैसे कि अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में जोड़ी गयी है। मुसलमान घर में पालित होने पर भी कबीर हिंदू विचारों में सराबोर होना उनके शरीर में प्रवाहित होने वाले ब्राह्मण अथवा कम से कम हिंदू रक्त की ही ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने माता-पिता का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है और जहाँ कहीं उन्होंने अपने संबंध में कुछ कहा भी है, वहाँ अपने को जुलाहा और बनारस का रहने वाला बताया है-

'जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर'
'मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा। '
'तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा। '

परंतु जान पड़ता है कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि मेरा ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ होता तो अच्छा होता। वे पूर्व जन्म के अपने ब्राह्मण होने की कल्पना कर अपना परितोष कर लेते हैं। एक पद में वे कहते हैं–

'पूरब जनम हम ब्राह्मन होते वोछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना।। '

ग्रंथसाहब में कबीरदास का एक पद दिया है, जिसमें कबीरदास कहते हैं–'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि काशी बसे आयी। ' एक दूसरे पद में कबीरदास कहते हैं–'तोरे भरोसे मगहर बसियो मेरे मन की तपन बुझाई। ' यह तो प्रसिद्ध ही है कि कबीरदास अंत में मगहर में जाकर बसे और वहीं उनका परलोकवास हुआ, पर 'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि काशी बसे आयी' से तो यह ध्वनि निकलती है कि उनका जन्म ही मगहर में हुआ था और फिर ये काशी में आकर बस गये और अंत में फिर मगहर में जाकर परलोक सिधारे, तो क्या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ में जन्म पाने और नीरू तथा नीमा से पालित–पोषित होने की समस्त कथा केवल मनगढ़ंत है और उसमें कुछ भी सार नहीं। यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है।

कुछ लोग कबीर को नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानते हैं, परंतु इस मत के पक्ष में कोई साधार प्रमाण अब तक किसी ने नहीं दिया। स्वयं कबीर की एक उक्ति हम ऊपर दे चुके हैं, जिसमें उनका जन्म से मुसलमान न होना प्रकट होता है, परंतु 'जौ रे खुदाई तुरक मोहि करता आपै कटि किन जाई' से यह ध्वनित होता है कि वे मुसलमान माता–पिता की संतति थे। सब बातों पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार में लालित–पालित हुए थे। कदाचित् उनका बालकपन मगहर में बीता हो और पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर में जाना पड़ा हो।

(शीर्ष पर वापस)

गुरु

किंवदंती है कि जब कबीर भजन गा-गा कर उपदेश देने लगे तब उन्हें पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिये हमारे उपदेश मान्य नहीं होंगे, क्योंकि लोग उन्हें 'निगुरा' कहकर चिढ़ाते थे। लोगों का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नहीं ग्रहण किया, वह औरों को क्या उपदेश देगा! अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिंता हुई। कहते हैं, उस समय स्वामी रामानंदजी काशी में सबसे प्रसिद्ध महात्मा थे। अतएव कबीर उन्हीं की सेवा में पहुँचे। परंतु उन्होंने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। इस पर कबीर ने एक चाल चली, जो अपना काम कर गयी। रामानंदजी पंचगंगा घाट पर नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही स्नान करने जाया करते थे उस घाट की सीढ़ियों पर कबीर पहले से ही जाकर लेट रहे। स्वामीजी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अँधेरे में इन्हें न देखा, उनका पाँव इनके सिर पर पड़ गया, जिस पर स्वामीजी के मुँह से 'राम राम' निकल पड़ा। कबीर ने चट उठकर उनके पैर पकड़ लिये और कहा कि आप राम राम का मंत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानंदजी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।

'कासी में हम प्रकट भये हैं रामानंद चेताए' कबीर का यह वाक्य इस बात के प्रमाण में प्रस्तुत किया जाता है कि रामानंदजी उनके गुरु थे। जिन प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन किया गया है, उसमें यह वाक्य नहीं है और न ग्रंथसाहब ही में यह मिलता है। अतएव इसको प्रमाण मानकर इसके आधार पर कोई मत स्थिर करना उचित नहीं जँचता। केवल किंवदंती के आधार पर रामानंदजी को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानंदजी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् 1467 में हुई, इससे 14 या 15 वर्ष पहले भी उनके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था 11 वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म संवत् 1456 सिद्ध कर आये हैं। 11 वर्ष के बालक का घूम-फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता और यदि रामानंदजी की मृत्यु संवत् 1453 के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है, क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिए अभी तीन-चार वर्ष रहे होंगे।

पर जब तक कोई विरुद्ध दृढ़ प्रमाण नहीं मिलते, तब तक हम इस लोकप्रसिद्ध बात को कि रामानंदजी कबीर के गुरु थे, बिलकुल असत्य भी नहीं

ठहरा सकते। हो सकता है कि बाल्यकाल में बार-बार रामानंदजी के साक्षात्कार तथा उपदेशश्रवण से ('गुरु के सबद मेरा मन लागा') अथवा दूसरों के मुँह से उनके गुण तथा उपदेश सुनने में बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ गया हो, जिसके कारण उन्होंने आगे चलकर उन्हें अपना मानस गुरु मान लिया हो। कबीर मुसलमान माता-पिता की संतति हों चाहे नहीं, किंतु मुसलमान के घर में लालित-पालित होने पर भी उनका हिंदू विचारधारा में आप्लावित होना उन पर बाल्यकाल से ही किसी प्रभावशाली हिंदू का प्रभाव होना प्रदर्शित करता है-

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरय्या बोझ॥ '

से प्रकट होता है कि अपने गुरु रामानंद से प्रभावित होने से पहले कबीर पर हिंदू प्रभाव पड़ चुका था, जिससे वे मुसलमान कुल में परिपालित होने पर भी 'पाहन' पूजने वाले हो गये थे। कबीर लोगों के कहने से कोई काम करने वाले नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंधविश्वासों के विरुद्ध लगा दिया था। यदि स्वयं उनका हार्दिक विश्वास न होता कि गुरु बनाना आवश्यक है, तो वे किसी के कहने की परवाह न करते, किंतु उन्होंने स्वयं कहा है-

'गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै। '
'गुरु बिन इह जग कौन भरोसा, करके संग ह्वै रहिए। '

परंतु वे गुरु और शिष्य का शारीरिक साक्षात्कार आवश्यक नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु के साथ मानसिक साक्षात्कार से भी शिष्यत्व का निर्वाह हो सकता है-

'कबीर गुरु बसै बनारसी सिष समंदर तीर।
बिर्सया नहीं बींसरे जे गुण होई सरीर॥'

कबीर अपने आप में शिष्य के लिए आवश्यक गुणों का अभाव नहीं समझते थे। वे उन एक आध में से थे जो गुरुज्ञान से अपना उद्धार कर सकते थे, जिनके संबंध में कबीर ने कहा है-

'माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उबरंत॥ '

मुसलमान कबीरपंथियों का कहना है कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। कबीर ने अपने गुरु के बनारस निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस कारण ऊँजी के पीर और तकी उनके गुरु नहीं हो सकते।

'घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख' में उन्होंने तकी का नाम उस आदर से नहीं लिया है, जिस आदर से गुरु का नाम लिया जाता है, और जिसके प्रभाव से कबीर ने असंभव का भी संभव होना लिखा है-

'गुरु प्रसाद सूई कै नोकैं हस्ती आवै जाहि।'

बल्कि उल्टे वे तो तकी को ही उपदेश देते जान पड़ते हैं। यद्यपि यह वाक्य इस ग्रंथावली में कहीं नहीं मिलता, फिर भी स्थान-स्थान पर 'शेख' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो विशेष आदर से नहीं लिया गया है, वरन् जिसमें फटकार की मात्र ही अधिक देख पड़ती है, अतः तकी कबीर के गुरु तो हो ही नहीं सकते, हाँ यह हो सकता है कि कबीर कुछ समय तक उनके सत्संग में रहे हों, जैसा कि नीचे लिखे वचनों से भी प्रकट होता है। पर यह स्वयं कबीर के वचन हैं, इसमें भी संदेह है-

'मानिकपुरहिं कबीर बसेरी। मदहति सुनि शेख तकि केरी।
ऊजी सुनी जौनपुर थाना। झूँसी सुनि पीरन के नामा॥'

परंतु इसके अनन्तर भी वे जीवनपर्यंत राम नाम रटते रहे, जो स्पष्टतः रामानंद के प्रभाव का सूचक है, अतएव स्वामी रामानंद को कबीर का गुरु मानने में कोई अड़चन नहीं है, चाहे उन्होंने स्वयं उन्हीं से मंत्र ग्रहण किया हो अथवा उन्हें अपना मानस गुरु बनाया हो। उन्होंने किसी मुसलमान फकीर को अपना गुरु बनाया हो इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

शिष्य

धर्मदास और सुरतगोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए। धर्मदास बनिए थे। उनके विषय में लोग कहते हैं कि वे पहले मूर्तिपूजक थे, उनका कबीर से पहले पहल काशी में साक्षात्कार हुआ था। उस समय कबीर ने उन्हें मूर्तिपूजक होने के कारण खूब फटकारा था। फिर वृंदावन में दोनों की भेंट हुई। उस समय उन्होंने कबीर को पहचाना नहीं पर बोले-'तुम्हारे उपदेश ठीक वैसे हैं जैसे एक साधु ने मुझे काशी में दिए थे। ' इस समय कबीर ने उनकी मूर्ति को, जिसे वे पूजा के लिए सदैव अपने साथ रखते थे, जमुना में डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वयं उनके घर बाँधोगढ़ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति पूजते हो, जिसके तुम्हारे तौलने के बाट हैं। उनके दिल में यह बात बैठ गयी और ये कबीर के शिष्य हो गये। कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ की एक अलग शाखा चलाई और सुखगोपाल

काशीवाली शाखा की गद्दी के अधिकारी हुए। धीरे-धीरे दोनों शाखाओं में बहुत भेद हो गया।

कबीर कर्मकांड को पाखंड समझते थे और उसके विरोधी थे परंतु आगे चलकर कबीरपंथ में कर्मकांड की प्रधानता हो गयी। कंठी और जनेऊ कबीरपंथ में भी चल पड़े। दीक्षा से मृत्युपर्यंत कबीरपंथियों को कर्मकांड की कई क्रियाओं का अनुसरण करना पड़ता है। इतनी बात अवश्य है कि कबीरपंथ में जातपाँत का कोई भेद नहीं है, हिंदू-मुसलमान दोनों धर्म के लोग उसमें सम्मिलित हो सकते हैं, परंतु ध्यान रखने की बात यह है कि कबीरपंथ में जाकर भी हिंदू-मुसलमान का भेद नहीं मिट जाता। हिंदू धर्म का प्रभाव इतना व्यापक है कि उससे अलग होने पर भी भारतीय नये-नये मत अंत में उसके प्रभाव से नहीं बच सकते।

माया में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी ही बात सोचता रहता है, इसी से वह परमात्मा को नहीं पा सकता। परमात्मा को पाने के लिए इस 'ममता' को छोड़ना पड़ता है-

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।'

इसीलिए ज्ञानी माया का त्याग आवश्यक बताते हैं, परंतु माया का त्याग कुछ खेल नहीं है। बाहर से वह इतनी मधुर जान पड़ती है कि उसे छोड़ते ही नहीं बनता-

'मीठी मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई'

माया ही विषय वासनाओं को जन्म देती है-

'इक डाइन मेरे मन बसै। नित उठि मेरे जिया को डसै
या डाइन के लरिका पाँच रे। निसि दिन मोहि नचावै नाच रे'

माया के पाँच पुत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। मनुष्य के अध:पात के कारण ये ही हैं। आत्मा की परमात्मिकता को यही व्यवधान में डालते हैं। अतएव परम तत्त्वार्थियों को इनसे सावधान रहना चाहिए-

'पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटै दिवस अरु संझा।
जो गढ़पति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई।। '

माया ही पाखंड की जननी है। अतएव माया का उचित स्थान पाखंडियों के ही पास है। इसलिए माया को संबोधन कर कबीर कहते हैं-

'तहाँ जाहु जहँ पाट पटंबर, अगर चन्दन घसि लीना।'

कर्मकांड को भी कबीर पाखंड ही के अंतर्गत मानते हैं, क्योंकि परमात्मा की भक्ति का संबंध मन से है, मन की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेगी, भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेंगे, परंतु केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजापाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया में पड़ना है–

'जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना।।'

इसीलिए कबीर ने 'कर का मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर' का उपदेश दिया है। उनका मत है कि जो माया ऋषि, मुनि, दिगम्बर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणों को भी धर पछाड़ती है, वही 'हरि भगत कै चेरी' है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि माया के सहचारियों का मिट जाना 'हरि भजन' का आवश्यक अंग है–

'राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नाहीं।
सत संतोष लीयै रहैं, धीरज मन माहीं।।
जन कौं काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनंद मैं, गोब्यंद गुण गावै।।'

माया से बचने का एक उपाय जो भक्तों को बताया गया है, वह संसार से विमुख रहना है। जैसे उलटा घड़ा पानी में नहीं डूबता परंतु सीधा घड़ा भरकर डूब जाता है, वैसे ही संसार के सम्मुख होने से मनुष्य माया में डूब जाता है, परंतु संसार से विमुख होकर रहने से माया का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता–

'औंधा घड़ा न जल मैं डूबे, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यह जग घिन करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया।।'

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है, जिससे आत्मा में परमात्मा का प्रदर्शन अर्थात् आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है अतएव आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए–

'जौ दरसन देख्या चाहिए, तौ दरपन मंजत रहिए।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई।।'

दरपन का यही माँजना हरिभक्ति करना है। भक्ति ही से मायाकृत अज्ञान दूर होता है और ज्ञानप्राप्ति के द्वारा अपने पराए का भेद मिटता है–

'उचित चेति च्यंति लै ताहीं। जा च्यंत आपा पर नाहीं।
हरि हिरदै एक ग्यान उपाया। ताथै छूट गयी सब माया।।'

इस पद में 'च्यंति' शब्द विचारणीय है, क्योंकि यह कबीर की भक्ति की विशेषता प्रकट करता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि ज्ञानियों की ब्रह्मजिज्ञासा और वैष्णवों की सगुणभक्ति की विशेष विशेष बातों को लेकर कबीर ने अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया अथवा वैष्णवों के तात्त्विक सिद्धान्तों और व्यावहारिक भक्ति के मिश्रण से कबीर की भक्ति का उद्‌भव हुआ है। सिद्धांत और व्यवहार में, कथनी और करनी में भेद रखना कबीर के स्वभाव के प्रतिकूल है। वैष्णवों में सदा से सिद्धांत और व्यवहार में भेद रहा है। सिद्धांत रूप से रामानुज जी ने विशिष्टाद्वैत वल्लभाचार्यजी ने शुद्धाद्वैत और माधवाचार्य ने द्वैत का प्रचार किया, पर व्यवहार के लिए सगुण भगवान की भक्ति का ध्येय ही सामने रखा गया।

सिद्धांत पक्ष का अज्ञेय ब्रह्म व्यवहार पक्ष में जाने बूझे मनुष्य के रूप में आ बैठा। हम दिखला चुके हैं कि कबीर अपने को वैष्णव समझते थे, परंतु सिद्धांत और व्यवहार का, कथनी और करनी का भेद वे पसन्द नहीं कर सकते थे, अतएव उन्होंने दोनों का मिश्रण कर अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया, जिसका मुसलमानी खुदावाद से भी बाहरी मेल था।

ज्ञानमार्ग के अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म शुष्क चिन्तन का विषय है। कबीर ने इस शुष्कता को निकालकर प्रेमपूर्ण चिन्तन की व्यवस्था की है। कबीर के इस प्रेम के दो पक्ष हैं, पारमार्थिक और ऐहिक। पारमार्थिक अर्थ में प्रेम का अर्थ लगन है, जिसमें मनुष्य अपनी वृत्तियों को संसार की सब वस्तुओं से विमुख करके समेट लेता है और केवल ब्रह्म के चिन्तन में लगा देता है तथा ऐहिक पक्ष में उसका अभिप्राय संसार के सब जीवों से प्रेम और दया का व्यवहार करना है।

जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, केवल वे ही अमर हैं, जन्ममरण का भय उन्हें नहीं रह जाता। उनके अतिरिक्त और सब नश्वर हैं। कबीरदास कहते हैं कि मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, इसीलिए वे अपने आप को अमर समझते हैं–

'हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जिवावनहारा।
अब न मरौं मरनै मन मानां, तेई मुए जिन राम न जाना।।'

मनुष्य की आत्मा ब्रह्म के साथ एक है और ब्रह्म ही एकमात्र चिरस्थायी सत्ता है, जिसका नाश नहीं हो सकता। अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नहीं हो सकता, यही कबीर के अस्तित्त्व का रहस्य है–

'हरि मरिहैं तो हम मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूँ मरिहैं।'

परंतु साक्षात्कार के पहले इस अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, परंतु उस प्रेम का मिलना सहज नहीं है, यह व्यक्तिगत साधना ही से उपलब्ध हो सकता है। यह पूर्ण आत्मोत्सर्ग चाहता है–

'कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहिं तो पिया न जाइ।।'

जब मनुष्य आत्मोत्सर्ग की इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब उसके लिए यह प्रेम अमृत हो जाता है–

'नीझर झरै अमीरस निकसै तिहि मदिरावलि छाका।'

इस प्रेमरूप मदिरा को मनुष्य यदि एक बार भी पी लेता है तो जीवनपर्यंत उसका नशा नहीं उतरता और उसे अपने तन मन की सब सुध-बुध भूल जाती है–

'हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहे, नाहीं तन की सार।।'

यह परमानंद की अवस्था है, जिसमें मनुष्य का लौकिक अंश, जो अज्ञानावस्था में प्रधान रहता है, किसी गिनती में नहीं रह जाता, उसे अपने में अंतर्हित आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है और उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति हो जाती है। इसी को साक्षात्कार होना कहते हैं। यह साक्षात्कार हो जाने पर अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर मनुष्य ब्रह्म ही हो जाता है–ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति। उपनिषद् के 'तत्त्वमसि' अथवा 'सोऽहं' भाव का यही रहस्य है–

'तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गयी, जित देखी तित तूँ।।'

यह सच है कि ऐतिहासिक अर्थ में निराकार निर्गुण ब्रह्म प्रेम का आलम्बन नहीं हो सकता, केवल चिन्तन का ही विषय हो सकता है, परंतु उस निराकार की इस विश्वविस्तृत सृष्टि में उस मूल तत्त्व की सत्ता का जो आभास मिल जाता है उसके कारण निर्गुण संसार के समस्त प्राणियों को अपने प्रेम और दया का पात्र बना लेता है, जब कि सगुण भक्त की बहुत कुछ भावुकता ठाकुर जी की पूर्ति के बनाव शृंगार और उनके भोगराग के आडम्बर ही में व्यय हो जाती है।

इसी प्रेम ने कबीर को ऊँच-नीच का भेदभाव दूर कर सबकी एकता प्रतिपादित करने की प्रेरणा दी थी-

'एक बूँद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जाति थै सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा।।'

जाति-पाँति का ही नहीं इसी से धर्माधर्म का भेद भी उन्हें अवास्तविक जँचा-

'कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।'

कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव-जन्तु उसकी सीमा के अन्दर आ जाते हैं, क्योंकि 'सबै जीव साई के प्यारे हैं। ' अँगरेजी के कवि कॉलरिज ने भी यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है-

'ही प्रेथ बेस्ट हू लव्थ बेस्ट,
आल थिंग्स बोथ ग्रेट ऐंड स्मालय
फार दि डियर गॉड हू लब्थ अस,
ही मेड ऐंड लव्थ आल।'

कबीर का यह प्रेमतत्त्व, जिसका ऊपर निरूपण किया गया है, सूफियों के संसर्ग का फल है, परंतु उसमें भी उन्होंने भारतीयता का पुट दे दिया है। सूफी परमात्मा को प्रियतमा के रूप में देखते हैं। उनके 'मजनूँ' को अल्लाह भी लैला नजर आता है, परंतु कबीरदास ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है, जो भारतीय माधुर्य भाव के सर्वथा मेल में है। फारस में विरह व्यथा, पुरुषों के मत्थे और भारत में स्त्रियों के ही मत्थे अधिक मढ़ी जाती है। वहाँ प्रेमी प्रिया को अपना प्रेम जताने के लिए उत्कट उद्योग करते हैं और यहाँ प्रेमिका विरह से व्याकुल होकर मुरझाए हुए फूल की तरह अपनी सत्ता तक मिटा देती है। इसी से वहाँ उपासक की पुरुष रूप में और यहाँ स्त्री रूप में भावना की गयी है, परंतु कबीर के सूफियाना भावों में भारतीयता कूट-कूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार निर्गुणवाद और सगुणवाद की एकेश्वरवाद से बाहरी समता रखने वाली बातों के सम्मिश्रण और उसके प्रेमतत्त्व के योग से कबीर की भक्ति का निर्माण हुआ। कबीर का विश्वास है कि भक्ति से मुक्ति हो जाती है-

'कहै कबीर संसा नाहीं भगति मुगति गति पाई रे। '

परंतु भक्ति निष्काम होनी चाहिए। परमात्मा का प्रेम अपस्वार्थ की पूर्ति का साधन नहीं है, मनुष्य को यह न सोचना चाहिए कि उससे मुझे कोई फल

मिलेगा। यदि फल की कामना हो गयी, तो वह भक्ति भक्ति न रह गयी और न उससे सत्य की प्राप्ति ही हो सकती है–

'जब लग है बैकुंठ की आशा। तब लग न हरि चरन निवासा। '

ब्रह्म लौकिक वासनाओं से परे है। व्यक्तिगत उच्चतम 'साधन से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, वह स्वयं भक्त के लिए विशेष चिन्तित नहीं रहता, क्योंकि भक्त भी ब्रह्म ही है। वह किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता, उसे अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति भर कर लेनी पड़ती है, जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, कोई खेल नहीं है। इसीलिए ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, जो कबीर मनुष्य से ऐहिक अंश छुड़ाकर उसे ब्रह्मत्व तक पहुँचाना चाहते हैं, उनकी ब्रह्म में लौकिक भावनाओं का समावेश करके उसका अध:पात करने की व्यग्रता स्वाभाविक ही है–

'ना दसरथ घरि औतरि आवा, लंका का राव सतावा।
देवै कूप न औतरि आवा, ना जसवै गोद खिलावा॥
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया।
बावन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद ले न उधरिया॥
गंडक सालिकराम न कोल, मछ कछ ह्वै जलहिं न डोला।
बद्री वैस्य ध्यान नहिं छावा, परसराम ह्वै खत्री न सँतावा॥'

प्रतिमापूजन के वे घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का, जिसके लिए कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी? जगह जगह पर उन्होंने मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है–

'हम भी पाहन पूजते होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डार्ध्या सिर थैं बोझ॥
सेवें सालिगराम कूँ मन की भ्रंति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं, दिन दिन अधकी लाइ॥'

जिसका आकार नहीं, उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न वैसा ही है जैसा झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्रान्ति बढ़ेगी ही, घट नहीं सकतीय और उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव ही है।

मूर्तिपूजा में भगवान् की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है, उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते हैं–

'लाडू लावर लापसी पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुरारा ले चला दे मूरति के मुख छार।।'

यद्यपि कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तथापि हिंदूमत की कई बातें वे पूर्णतया मानते हैं। हिन्दुओं का जन्म-मरण-संबंधी सिद्धांत वे मानते हैं। मुसलमानों की तरह वे एक ही जन्म नहीं मानते, जिसके बाद मरने पर प्राणी कब्र में पड़ा पड़ा कयामत तक सड़ा करता है, जब तक कि प्राणी पुनरुज्जीवित होकर खुदावंद करीम के सामने अपने अपने कर्मों के अनुसार अनन्त काल तक दोजख की आग में जलने अथवा बिहिश्त में हूरों और गिलमों का सुख भोगने के लिए पेश किए जायँ। एक स्थान पर, 'उबरहुगे किस बोले' कह कर कबीर ने इसी विश्वास की ओर संकेत किया है, परंतु यह उन्होंने बोलचाल के ढ़ंग पर कहा है, सिद्धांत के रूप में नहीं। ये बातें कुछ उसी प्रकार कही गयी हैं, जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण दिन-रात का होना मानने पर भी साधारण बोलचाल में यह कहना कि 'सूर्य उगता है'। सिद्धांत रूप से वे अनेक जन्म मानते हैं। 'जनम अनेक गया अरु आया'। इस जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है वह पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है, 'देखौ कर्म कबीर का कछू पूरब जनम का लेखा'। कबीर ने यह तो कहा है कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, परंतु उन्होंने यह नहीं कहा कि सृष्टि की रचना कैसे और किस क्रम से हुई है, कौन तत्त्व पहले हुआ और कौन पीछे। इस विषय में वे शंका मात्र उठाकर रह गये हैं, उसका समाधान उन्होंने नहीं किया-

'प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन की पांणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनांणी।।
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत की रेंत।
प्रथमे पुरिष की नारी प्रथमे प्रभू, प्रथमे, बीज की खेत।।
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप की पुण्यं।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कछु आहि कि सुन्यं।। '

ऊपर हमने कबीर की रचना में वेदान्तसम्मत अद्वैतवाद की एक पूरी-पूरी पद्धति के दर्शन किए हैं, जिसे हम शुद्धाद्वैत नहीं मान सकते। शुद्धाद्वैत में माया ब्रह्म की ही शक्ति मानी जाती है, परंतु कबीर ने माया को मिथ्या या भ्रममात्र माना है, जिसका कारण अज्ञान है। यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परंतु बीच में अज्ञान के आ पड़ने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अज्ञानकृत भेद मिट

जाता है और आत्मा को अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति हो जाती है। यही बात हम कबीर में देख चुके हैं।

परंतु उन पर समय और परिस्थितियों का अलक्ष्य प्रभाव भी पड़ा था, जिसके कारण वे असावधानी में ऐसी बातें भी कह गये हैं, जो उनके अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाती। उन्होंने स्थान-स्थान पर अवतारवाद का विरोध ही किया है, परंतु उनके नीचे लिखे पद से अवतारवाद का समर्थन भी होता है-

'बांधि मारि भावै देह जारि जै, हूँ राम छाड़ौ ताँ मेरे गुरुहिं यारि।
तब काटि खड़ग कोप्यो रिसाइ तोहि राखनहारौं मोंहि बताइ॥
खम्भा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मारौं नख विदारि।
महा पुरुष देवाधिदेव, नरयंध प्रकट किए भगति मेव॥
कहै कबीर कोई लहैं न पारय प्रहिलाद उबारो अनेक बार।'

बात यह है कि उपासना के लिए उपास्य में कुछ गुणों का आरोप आवश्यक होता है बिना गुणों के प्रेम का आलम्बन हो ही नहीं सकता। उपनिषदों तक में निराकार निर्गुण ब्रह्म में उपासना के लिए गुणों का आरोप किया गया है। एकेश्वरवादी धर्मों में जहाँ कट्टरपन ने परमात्मा में गुणों का आरोप नहीं करने दिया, वहाँ परमात्मा और मनुष्य के बीच में एक और मनुष्य का सहारा लिया गया है। ईसाइयों को ईसा और मुसलमानों को मुहम्मद का अवलम्बन ग्रहण करना पड़ा। भक्ति झोंक में कबीर भी जब सांसारिक प्रेममूलक सम्बन्धों के द्वारा परमात्मा की भावना करने लगे, तब परमात्मा में स्वयं ही गुणों का आरोप हो गया। माता-पिता और प्रियतम निर्जीव पत्थर नहीं हो सकते। माता के रूप में परमात्मा की भावना करते हुए वे कहते हैं-

'हरि जननी मैं बालक तेरा। कस नहिं बकसहु अवगुण मेरा। '

अवतारवाद में यही सगुणवाद पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है।

कबीर में कई बात ऐसी भी हैं, जिसमें दिखाई देने वाला विरोध केवल भाषा की असावधानी से आया है। कबीर शिक्षित नहीं थे, इसलिए उनकी रचनाओं में यह दोष क्षम्य है।

(शीर्ष पर वापस)

व्यावहारिक सिद्धांत

कबीरदासजी ने धार्मिक सिद्धान्तों के साथ-साथ उनकी पुष्टि के लिए अनेक स्थानों पर अलौकिक आचरण अथवा व्यवहारों का वर्णन किया है। यदि

उनकी वाणी का पूरा-पूरा विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनकी साखियों का विशेष संबंध लौकिक आचरणों से है तथा पदों का संबंध विशेष कर धार्मिक सिद्धान्तों तथा अंशत: लौकिक आचरण से है। लौकिक आचरण की इन बातों को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, कुछ तो निवृत्तिमूलक हैं और कुछ प्रवृत्तिमूलक।

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातन्त्रय के पहले विचार स्वातन्त्रय आवश्यक है। जिनका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पाँवों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा। उन्होंने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं अत: लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी और हिन्दुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मंदिर सबका उन्होंने विरोध किया है। कर्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की है। इस बाहरी पाखंड के लिए उन्होंने हिंदू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडम्बर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नामधारी धर्म के बन्धन में अपने आपको नहीं डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते हैं, वह सब धर्मों में है, परंतु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाखंड से परिच्छिन्न कर दिया है। इस बाहरी आडम्बर को दूर कर देने से धर्मभेद से समस्त झगड़े, बखेड़े दूर हो जाते हैं, क्योंकि उससे वास्तव में धर्मभेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिंदू मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न स्वयं ही हल हो जाता है, पर एक अलग धार्मिक संप्रदाय के रूप में कबीरपंथ तो कबीर के मूल सिद्धान्तों के वैसे ही विरुद्ध है जैसे हिंदू और मुसलमान धर्म, जिनका उन्होंने जी भर खंडन किया है।

धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्मसुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिन्दुओं की जाति-पाँति, छुआछूत, खान-पान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय में हिंदू मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है। हिन्दुओं के चौके के विषय में वे कहते हैं-

'एकै पवन एक ही पाणी करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती॥
धरती लीपि पवित्तर कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
याका हम सूँ कहो विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा॥ '

छुआछूत का उन्होंने इन शब्दों में खंडन किया है-

'काहैं की कीजै पाँडे छोति विचारा। छोतिहिं ते उपना संसारा॥
हमारे कैसें लोहू तुम्हारे कैसें दूध। तुम्ह कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति-छोति करता तुम्हहीं जाए। तौ ग्रभवास काहे को आये
जनमत छोति मरत ही छोति। कहै कबीर हरि की निर्मल जोति'

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू या मुसलमान नहीं हो सकता। इसकी कबीर ने कितने सीधे किंतु मन में जम जानेवाले ढ़ंग से कहा है-

'जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तौ आन वाट ह्वै क्यों नहिं आया। '
'जौ तूँ तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया। '

उच्चता और नीचता का संबंध उन्होंने व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है, क्योंकि कोई व्यवसाय नीच नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे, जो हाथ-पाँव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्त्व जानते थे और अपनी आजीविका के लिए अपने हाथों का आसरा रखते थे।

परंतु अपनी आजीविका भर से वे मतलब रखते थे, धन सम्पत्ति जोड़ना वे उचित नहीं समझते थे। थोड़े ही में संतोष करने का उन्होंने उपदेश दिया है। जो कुछ वे दिन भर में कमाते थे, उसका कुछ अंश अवश्य साधु संतों की सेवा में लगाते थे और कभी-कभी सब कुछ उनकी सेवा में अर्पित कर डालते और आप निराहार रह जाते थे। कहते हैं, कि एक दिन वे गाढ़े का एक थान बेचने के लिए हाट गये। वस्त्र के अभाव से दु:खी एक फकीर को देखकर उन्होंने उसमें से आधा उसे दे दिया, पर जब फकीर ने कहा कि मेरा तन ढ़कने के लिए वह काफी नहीं है, तब उन्होंने सारा उसे ही दे डाला और खाली हाथ घर चले आये। धन धरती जोड़ना कबीर की सन्तोषोवृत्ति के विरुद्ध था। उन्होंने कहा भी है-

'काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी, का जाणूँ कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मंदिर महल चिनाऊँ, मूवाँ पीछै घड़ी एक रहन न पाऊँ'

काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा, साढ़े तीन हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेतीं भुइ लीजै॥

कबीर अत्यंत सरल हृदय थे। बालकों में सरलता की पराकाष्ठा होती है, यह सब जानते हैं। इसका कारण वर्ड्सवर्थ के अनुसार यह है कि बालक में पारमार्थिकता अधिक रहती है, पर ज्यों-ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसमें पारमार्थिकता की न्यूनता होती जाती है। इसीलिए अपने खोए हुए बालकत्व के लिए वर्ड्सर्वथ कवि क्षुब्ध हैं, परंतु कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं भक्ति भाव से अपने मन को निर्मल कर परमात्मा की ओर मुड़े तो वह फिर से इस सरलता को प्राप्त कर बालक हो सकता है-

जों तन माहैं मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सों सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ॥

कबीर की गर्वोक्तियों के कारण लोग उन्हें घमण्डी समझते हैं। ये गर्वोक्तियाँ कम नहीं हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध नीचे लिखा पद, जो इस ग्रंथावली में नहीं है, लोगों में बहुत प्रसिद्ध है-

'झीनी-झीनी बीनी चदरिया। '
काहै कै ताना काहैं के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरख डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

इस ग्रंथावली में भी ऐसी गर्वोक्तियों की कोई कमी नहीं है-

(क) 'हम न मरै मरिहै संसारा। '

(ख) 'एक न भूला दोइ न भूला-भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम अधारा'

(ग) 'देखौ कर्म कबीर का, कछू पूरब जनम का लेखा।
जाका महल न मुनि लहै, सौ दोसत किया अलेखा॥ '

परंतु यह गर्व लोगों को नीचे देखनेवाला गर्व नहीं है-साक्षात्कारजन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि से देखता है। अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी में उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है, जो उनके मुँह से अनुचित

भी नहीं लगता। जो हो, कम से कम छोटे मुँह बड़ी बात की कहावत उनके विषय में चरितार्थ नहीं हो सकती। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होंने स्वयं अपनी गिनती गोपीचन्द, भर्तृहरि और गोरखनाथ के साथ की है-

'गोरष भरथरि गोपीचन्दा। ता मन सो मिलि करै अनन्दा।
अकल निरंजन सकल सरीरा। ता मन सौं मिलि रहा कबीरा।'

परंतु इतने ऊँचे पद पर वे विनय के द्वारा ही पहुँच सके हैं। इसी से उनका गर्व उच्चतम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है, जिसकी आत्मा विनय है। सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने परमात्मा के महत्त्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है-

'तुम्ह समानि बाता नहीं, हम से नहीं पापी। '
स्वामी के सामने वे विनय के अवतार हैं-
'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ॥ '

उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे बाट का रोड़ा होकर रहना चाहते हैं, जिस पर सबके पैर पड़ते हैं, परंतु रोड़ा पाँव में चुभकर बटोहियों को दुःख देता है, इसलिए वह धूल के समान रहना उचित समझते हैं। किंतु धूल भी उड़कर शरीर पर गिरती है और उसे मैला करती है, इसलिए पानी की तरह होकर रहना चाहिए जो सबका मैल धोवे, पर पानी भी ठंडा और गरम होता है, जो अरुचि का विषय हो सकता है। इसलिए भगवान् की ही तरह होकर रहना चाहिए। कबीर का गर्व और दैन्य दोनों मनुष्य को उसकी पारमात्मिकता की अनुभूति कराने वाले हैं।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं थी और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भण्डार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुई, उन्हें वे अपनी विचारधारा के द्वारा मानसिक पाचन से सर्वदा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'। फिर भी कई बातें उनमें ऐसी मिलती हैं, जिनका उनके सिद्धान्तों के साथ मेल नहीं पड़ता। उनकी ऐसी उक्तियों को समय और परिस्थितियों का तथा भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों के संसर्ग का अलक्ष्य प्रभाव समझना चाहिए।

कबीर बहुश्रुत थे। सत्संग से वेदान्त, उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान उनको हो गया था, परंतु वेदों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। उन्होंने वेदों की जो निंदा की है, वह यह समझकर कि पण्डितों में जो पाखंड

फैला हुआ है, वह वेदज्ञान के कारण ही है। योग की क्रियाओं के विषय में भी उनकी जानकारी थी। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना षट्चक्र आदि का उन्होंने उल्लेख किया है, परंतु वे योगी नहीं थे। उन्होंने योग को भी माया में सम्मिलित किया है। केवल हिंदू मुसलमान दो धर्मों का उन्होंने मुख्यतया उल्लेख किया है पर इससे यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में प्रचलित और धर्मों से वे परिचित नहीं थे। वे कहते हैं–

'अरु भूले षटदरसन भाई। पाषंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध औरे साकत सैना। चारवाक चतुरंग बिहूना।।
जैन जीव की सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आनै। '

इससे ज्ञात होता है कि अन्य धर्मों से भी उनका परिचय था, पर कहाँ तक उनके गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे, यह नहीं विदित होता। जहाँ तक देखा जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी बातों पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। मार्मिक तात्त्विक बातों तक ये नहीं गये हैं। ईसाई धर्म का उनके समय तक इस देश में प्रवेश नहीं हुआ था, पर बिलाइत का नाम उनकी साखी में एक स्थान पर अवश्य आया है–'बिन बिलाइत बड़ राज'। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'बिलाइत' से उनका यूरोप के किसी देश से अभिप्राय था अथवा केवल विदेश से। कबीरदासजी ने शाक्तों की बड़ी निंदा की है। जैसे–

वैश्नो की छपरी भली, न साकत का बड़ागाँव।
साषत ब्राभण मति मिलै, वैषनों मिलै चंडाल।
अंक माल दे भेटिये, मानौ मिलै गोपाल।।

कबीर रहस्यवादी कवि हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसारचक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञान शक्ति के द्वारा होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी, परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती, जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचारधारा के द्वारा हो सकता है, जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र में सिद्ध हो गये हैं, उन्होंने जब-जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब-तब अपनी उक्तियों की स्पष्टता देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाया है। कबीर ने स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूँगे के गुड़ सा है–

(क) 'अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाइ। '
(ख) 'तजि बावै दाहिनै बिकार, हरि पद दिढ़ करि गहिए।
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया, बूझै तो का कहिए। '

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है। गीता में भगवान् के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है। परमात्मा को पिता, माता, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है, क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनकी अवतार मानने के मूल में भी रहस्यवाद ही है। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल से वेदों में ही मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में 'योनः पिता जनिता यो विधाता' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदों में परमात्मा को माता भी कहा गया है–'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शकतो बभूविय'। परमात्मा के मातृपितृ से प्राणियों के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है। 'अज्येष्ठासौ अकनिष्ठासौ एते सभ्रातरौ'। बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद में परमात्मा के पितृत्व और प्राणियों के भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती है, अतएव पश्चिमी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है। कबीर में भी यह भावना मिलती है–

'बाप राम राया अबहूँ सरन तिहारी। '

उन्होंने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है–

'हरि जननी मैं बालिक तेरा। '

परंतु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने में है, जो भारतीयों की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है। उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है। चिन्तन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिम्बित नहीं होता, जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है। यह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है, जिसके चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने जगत् के सब रूपों को दिखलाया

है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, उसी के भिन्न-भिन्न व्यक्त रूप हैं।

स्वान्त्र्य के अवतार स्त्रोत्व का आध्यात्मिक मूल समझने वाले अंग्रेजी के कवि शैली को भी सर्वात्मवादी रहस्यता ही 'मर्मर करते हुए काननों में झरनों में, उन पुष्पों की परागगंध में जो उस दिव्य चुम्बन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ बरौते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मन्द या तीव्र समीर में, प्रत्येक आते-जाते मेघखंड की झड़ी में, बसंतकालीन विहंगमों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी प्रियतम की मधुर वाणी सुनाई दी है। कबीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेमाख्यात परंपरा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं, जिसमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवादमूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्रीरूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्रीरूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है, जगत् में पुरुष उन्हें और कोई दिखाई ही नहीं दिया। कबीर भी कहते हैं-

(क) कहै कबीर व्याहि चले हैं 'पुरुष एक अविनासी। '

(ख) 'सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।। '

इस तरह के एक दो नहीं कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। राम की सुहागिन पहले अपना प्रेमनिवेदन करती है-

'गोकुल नायक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे। '

यह जीवात्मा का परमात्मा में लगन लगने का आरंभिक रूप है। इसे ब्याह के पहले का पूर्वानुराग समझना चाहिए।

कभी वह वियोगिनी के रूप में प्रकट होती है और उस वियोगाग्नि में जले हुए हृदय के उद्‌गार प्रकट करती है-

'यह तन जालौं मसि करौं, लिखौ राम का नाउँ।
लेखणि करौं करंक की लिखि-लिखि राम पठाउँ।। '

परमात्मा के वियोग से जनित सारी सृष्टि का दु:ख कितना घना होकर कबीर के हृदय में समाया है।

राम की वियोगिन आकुलता से उन दिनों की बाट देखती है, जब वह प्रियतम का आलिंगन करेगी–

'वै दिन कब आवैंगे भाई।
जा कारनि हम देह धरीं है, मिलिबौ अंग लगाई।। '

यहाँ जीवात्मा के परमात्मा से मिलने की आकुलता की ओर संकेत है। इस आकुलता के साथ-साथ भय भी रहता है। सारा विश्व जिसका व्यक्त रूप है, उस प्रियतम से मिलने के लिए असाधारण तैयारी करने की आवश्यकता होती है। 'हरि की दुलहिन' को भय इस आशंका से होता है कि वह उतनी तैयारी कर सकेगी या नहीं। उसे अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। फिर रहस्य केलि के समय प्रियतम के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना होगा, यह भी नहीं जानती–

'मन प्रतीति न प्रेमरस ना इस तन में ढ़ंग।
क्या जाणौ उस पीय सूँ कैसे रहसी रंग।। '

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का आभास है, जो एक साधारण घटना नहीं है। ज्यों-ज्यों जीवात्मा को अपनी पारमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यों-त्यों उसका भय जाता रहता है। लौकिक भाषा में इसी की ओर इस पद में इशारा है–

अब तोंहिं जान न दैहूँ राम पियारे। ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे।
यह प्रेम की ढ़िठाई है।

परामात्मा से मिलने के लिए ऐसी ऊँची गैल, राह रपटीली नहीं तै करनी पड़ती जहाँ 'पाँव नहीं ठहराय'। वह तो घर बैठे मिल जायेंगे पर उसके लिए पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो हृदय ही में है–

'बहुत दिनन के बिछेरे हरि पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये। '

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद–

'मो को कहाँ ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवन, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।।'

बहुत दिनों से चढ़ा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है। जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है–

'पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाय, कहौं केहि रोई॥'

रहस्यमय उक्तियों की हृदयात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है। उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है, उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजन इसीलिए करना चाहिए कि ईश्वरप्राप्ति में आगे की सीढ़ी सहज में चढ़ सके, क्योंकि साधारणत: सब लोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक-ठीक स्वरूप समझने में नितान्त असमर्थ होते हैं, अत: मूर्तिपूजा के द्वारा मानो मनुष्य को ब्रह्म के सभी साक्षात्कार की प्रारम्भिक शिक्षा मिलती है। उसके आगे बढ़कर सचमुच पत्थर को परमात्मा मानने से फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता।

ईसाइयों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इतिश्री कर दी, जब ईसा और लौकिक अर्थ में परमात्मा या पवित्रत्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और सूर में अवतारवाद की मूलभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है। सखी संप्रदाय ने मनुष्यों को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियों का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' के रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद में पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म संप्रदायों में इन्द्रियलोलुपता का नारकीय नृत्य देखने में आता है।

रहस्यवादी कवियों का वास्तववादियों से इसी बात में भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्य-विषय का आभास भर देते हैं। उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिए वे व्यंजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते हैं और चित्रधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बातें अन्योक्ति के रूप में हुआ करती हैं। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रसिकों की सम्मति में कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्य भाव भी उन्हें फीका लगता है, उनके चित्रों में उन्हें अनेकरूपता नहीं दिखाई देती। कबीर ने अपनी उक्तियों को काव्य की काट-छाँट नहीं दी है, परंतु इसकी

उन्हें जरूरत ही नहीं थी। इस बात का प्रयास वह करेगा, जिसमें कुछ सार न हो।

कबीर में चित्रों की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। ब्याह का ही दृश्य वे कई बार अवश्य लाए हैं, पर जैसा कि पाठकों को आगे चलने पर मालूम होता जायेगा, उनका रहस्यवाद माधुर्य भाव में ही नहीं समाप्त हो जाता। प्रकृति से चुने-चुने चित्र उनकी उक्तियों में अपने आप आ बैठे हैं। हाँ, उन्होंने प्रयास करके अपनी उक्तियों को काव्य की मधुरता नहीं दी है। फिर भी उनकी ऊपरी सहृदयता न सही तो अनन्य हृदयता और तल्लीनता व्यर्थ कैसे जा सकती थी, जो उन्हें बिलकुल ही रूखा समझते हैं, उन्हें उनकी रहस्यमयी अन्योक्तियों को देखना चाहिए-

'काहे री नलिनी! तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास, जल में नलिनी तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान। '

कैसा मृदुल मनमोहक चित्र है! इसका सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी है, जल ब्रह्म तत्त्व है। इसी में प्रकृति के नाना रूपों की उत्पत्ति होती है, यही पोषक तत्त्व है, जो मनुष्य और नाना रूपों में स्वयं विद्यमान है। इस जल की शीतलता के सामने कोई ताप ठहर नहीं सकता। यह तत्त्व समझकर इस पोषण सामग्री का उपयोग करने वाला (अर्थात् ज्ञानी) मर ही कैसे सकता है?

औद्यानिक भाषा में सांसारिक जीवन की नश्वरता का कितना प्रभावशाली आभास नीचे लिखे दोहे में है-

'मालिन आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार।'

और देखिए-

'बाढ़ी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।
हम कटे कि कछु नहीं, पंखेरू घर भाग॥ '

बढ़ई काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कंप है, पक्षी आत्मा है। यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुःख न करके ब्रह्म तत्त्व में लीन होने का प्रबन्ध करो, पक्षी का घर भागना यही है। काटते समय पेड़ को हिलने और वृद्धावस्था में शरीर को काँपते किसने नहीं देखा

होगा, परंतु किस लिए वह हिलता-काँपता है, उसका रहस्य कबीर ही जान पाए हैं। यह आभास किसको नहीं मिलता, पर कितने हैं, जो उनको समझ पाते हैं।

नाश नीची स्थितिवालों के लिए ही मुँह बाए नहीं खड़ा है, ऊँची स्थितिवाले भी उसी घाट उतरेंगे इस बात का संकेत यह दोहा देता है-

'फागुण आवत देखि करि, बन रूना मन माहिं।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाहिं॥ '

कबीर की चमत्कारपूर्ण उलटवाँसियाँ भी रहस्यपूर्ण हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है, जिसमें इन्द्रियों के घोड़े जुते हैं, घोड़ों पर मन की लगाम लगी हुई है, जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ में है। 'परमपद' की पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार उसका परिचालन होना चाहिए। शरीर सेवक है, आत्मा स्वामी है। यह स्वाभाविक क्रम है, परंतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढ़ीली पड़ जाय, तब यह क्रम उलट जाता है, स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है। रथ के अधीन होकर स्वामी भटका करता है और प्रायः ऐसा होता है कि घोड़ों (इन्द्रियों) के मनमाने आचरण से रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। भवजाल में पड़े हुए मनुष्यों की इसी उलटी अवस्था को विशेषकर कबीर ने अपनी उलटवाँसियों द्वारा व्यंजित कर लोगों को आश्चर्य में डाला है-

'ऐसा अद्‌भुत मेरा गुरु कथ्या, मैं रह्या उमेषै।
मूसा हस्ती सौं लड़ै कोई विरला पेषै॥
मूसा बैठा बाँबि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापिण गिली यह अचरज भाई॥
चींटी परबत ऊपण्यां ले राख्यौ चौड़ै।
मुर्गा मिनकी सूँ लड़ै झल पाणीं दौड़ै॥
सुरही चूषै बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै।
भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
कहैं कबीर ताहि गुरु करौं, जो या पदहि विचारै॥ '

सबका कारण परब्रह्म किसी का कार्य नहीं है, इस बात का आभास देने वाला यह सांकेतिक पद कितना रहस्यपूर्ण है-

'बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाउँ तरवर चढ़िया।
अस बिन पाषर, गज बिन गुड़िया, बिन पंडै संग्राम लडिया॥
बीज बिन अंकुर, पेड़ बिन तरवर, बिन सापा तरवर फलिया।
रूप बिन नारी, पुहुप बिन परिमल, बिन नीरै सर भरिया॥ '

सभी संत कवियों के काव्य में थोड़ा-बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है। बंगला के वर्तमान कवीन्द्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होंने कबीर ही में पाया, परंतु उनमें पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होंने पाश्चात्य ढ़ंग से सजाया है। इसी से यूरोप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है, जब से उन्हें नोबेल प्राइज (पुरस्कार) मिला तब से लोग उनकी गीतांजलि की बेतरह नकल करने पर तुले हुए हैं। हिंदी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है। सच्चे रहस्यवाद के आविर्भाव के लिए प्रतिभा की अपेक्षा होती है। कबीर इसी प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। पिंगल के नियमों को भंग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडंबर रहस्यवादी कविता का आसन नहीं प्राप्त कर सकता है।

(शीर्ष पर वापस)

काव्यत्व

कबीर के काव्य के विषय में बहुत कुछ बातें उनके रहस्यवाद के अंतर्गत आ चुकी हैं, यहाँ पर बहुत कम कहना शेष है। कविता के लिए उन्होंने कविता नहीं की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं है। उसमें उनका हृदय घुला मिला है, उनकी प्रतिभा हृदयसमन्वित है। उनकी बातों में बल है, जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। अक्खड़ ढ़ंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और ही मिठास है, जो खरी-खरी बातें कहने वाले ही की बातों में मिल सकती है। उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा ही का फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ कर कहावतों के रूप में चल पड़ी हैं। हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गयी है, वह अत्यंत भावापन्न है। उसी में उनकी प्रतिभा का चमत्कार है। शब्दों के जोड़-तोड़ में चमत्कार लाने के फेर में पड़ना उनको प्रकृति के प्रतिकूल था। दूर की सूझ जिस अर्थ में केशव, बिहारी आदि

कवियों में मिलती है, उस अर्थ में उनमें पाना असंभव है। प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिए उनकी उलटवाँसियाँ केशव की शब्दमाया को मात करती हैं, परंतु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता। रात-दिन आँखों में आने वाले प्रकृति के सामान्य व्यापारों के उलटे व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनकी हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर बैठी है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर में ऐसी भी उक्तियाँ हैं, जिनमें कविता के दर्शन नहीं होते और ऐसे पद्य कम नहीं हैं, किंतु उनके कारण कबीर के वास्तविक काव्य का महत्व कम नहीं हो सकता है, जो अत्यंत उच्चकोटि का है और जिसका बहुत कुछ माधुर्य रहस्यवाद के प्रकरण के अंतर्गत दिखाया जा चुका है।

जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता का काव्यानंद उनमें नहीं मिलता। परंपरा से बँधे हुए लोगों को काव्यजगत् में भी इन्द्रियलोलुपता का कीड़ा बनकर रहना भी भला लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षी के प्रति होनेवाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की पराकष्ठा आत्मसमर्पण का मानो काव्यजगत् में कोई मूल्य ही नहीं है।

कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ाया हैं, जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं, वे उन्होंने खोज-खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में कला का उनमें सर्वथा अभाव है। 'बेसिर-पैर की बातें, 'वायवी अवस्तुओं' का स्थान और नाम निर्देश कर देने को कवि कर्म कहकर शेक्सपियर ने कवियों को सन्निपात या पागलपन में बेसिर-पैर की बातें बकने वालों की श्रेणी में रख दिया है। जिन कवियों के संबंध में 'किं न जलपंति' कहा जा सकता है, उन्हीं का उल्लेख 'किं न खादंति' वाले वायसों के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिए तथ्य आवश्यक है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला आडम्बरों के बन्धन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त करें तो कम कवि सच्चे कलाकारों की कोटि में आ सकेंगे, परंतु कबीर का आसन उस ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य की स्वतंत्रता नहीं मिलती तो और कहीं नहीं मिल सकती। कबीर के महत्त्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

कबीर के काव्य में नीचे लिखी हुई खटकने वाली बातें भी हैं, जिनकी ओर स्थान-स्थान पर संकेत करते आये हैं-

1. एक ही बात को उन्होंने कई बार दुहराया है, जिससे कहीं-कहीं रोचकता जाती रहती है।
2. उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिबिम्ब उनकी भाषा का अक्खड़पन होकर पड़ा है।
3. उनकी आधी से अधिक रचना दार्शनिक पद्यमात्र है, जिसको कविता नहीं कहना चाहिए।
4. उनकी कविता में साहित्यिकता का सर्वथा अभाव है। थोड़ी सी साहित्यिकता आ जाने से परंपरानुबद्ध रसिकों के लिए उपालम्भ का स्थान न रह जाता।
5. न उनकी भाषा परिमार्जित है और न उनके ग्रंथ पिंगलशास्त्र के नियम के अनुकूल हैं।

कबीरदास छन्दशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था। मात्राओं के घट-बढ़ जाने की चिंता करना व्यर्थ था। पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी, मौलिकता थी, उन्हें कुछ सन्देश देना था और उनके लिए शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हें तो इस ढ़ंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी, जो सुनने वालों के हृदय में पैठ जायँ और पैठकर जम जायँ। तिस पर वह हिंदी कविता के आरंभ के दिन थे, पर आजकल के रहस्यवादी काव्यों में न प्रतिभा के दर्शन होते हैं और न मौलिकता का आभास मिलता है। केवल ऊटपटांग कह देने और भाषा तथा पिंगल की उपेक्षा दिखाने में ही उन आवश्यक गुणों के अभावों की पूर्ति नहीं हो सकती।

(शीर्ष पर वापस)

भाषा

कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं, परंतु भाषा का निर्णय अधिकतर शब्दों पर निर्भर नहीं है। भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक चिह्न हैं, जो वाक्यविन्यास की विशेषताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के

मिलते हैं, क्रियापदों के रूप में अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं। कारक चिह्नों में कै, सन, सा आदि अवधी के हैं, को ब्रज का है और थे राजस्थानी का। यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है- 'मेरी बोली पूरबी', तथापि खड़ी ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। पूरबी से उनका क्या तात्पर्य है, यह नहीं कह सकते। उनका बनारस निवास पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है, परंतु उनकी रचना में बिहारी का पर्याप्त मेल है, यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है, उसमें मैथिली का भी कुछ संसर्ग दिखाई देता है। यदि 'बोली' का अर्थ मातृभाषा लें और 'पूरब' का बिहारी तो कबीर के जन्म के विषय पर एक नया ही प्रकाश पड़ जाता है। उनका अपना अर्थ जो कुछ हो, पर पाई जाती हैं, उनमें अवधी और बिहारी, दोनों बोलियाँ।

इस पंचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर-दूर के साधुसंतों का सत्संग किया था, जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों की बोलियों का प्रभाव पड़ा। खड़ी बोली का पुट इस दोहे में देखिए-

'कबीर कहता जात हूँ सणता है सब कोइ।
राम कहे भला होइगा, नहिंतर भला न होइ॥
आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा जीऊँगा।
गुरु के सबद रमि रमि रहूँगा।'

इसमें शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते हैं।

'जब लगि धसै न आभ' में 'धसै' ब्रजभाषा का है और 'आभ' फारसी के आब का बिगड़ा हुआ रूप है। आगे लिखे दोहे में अंषड़ियाँ, जीभड़ियाँ आदि रूप पंजाबी का और पड़ा क्रिया राजस्थानी प्रभाव प्रकट करते हैं-

'अंषड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़ा राम पुकारि पुकारि॥'

पंजाब के केवल बहुत से शब्द नहीं मुहावरे भी उनमें मिलते हैं। जैसे-

1. रलि गया आटे लूँण
2. लूण बिलग्गा पाणियाँ पाणी लूण विलग्ग

इनके उच्चारण पर भी पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगत होता है। न कोण कहना पंजाबी की ही विशेषता है। पंजाबी विवेक का उच्चारण बवेक करते हैं। कबीर में भी वह शब्द इसी रूप में मिलता है। बंगला के भी इनमें कुछ प्रयोग मिलते हैं। आछिली शब्द बंगला का छिली है, जो 'था' अर्थ में प्रयुक्त होता है- 'कहु

कबीर कुछ आछिलो जहिया। ' इसी प्रकार 'सकना' अर्थ में क्रिया के रूप भी जो अब केवल बंगला में मिलते हैं, पर जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी ने भी किया है, इनकी भाषा में पाए जाते हैं–

'गाँइ कु ठाकुर खत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।'

संस्कृत वर्ज्य से बिगड़कर बना हुआ एक 'बाज' शब्द तुलसी और जायसी दोनों में मिलता है। जायसी में यह बाझ रूप में मिलता है, पर आजकल इसका प्रयोग अधिकतर पंजाबी में ही होता है, जहाँ इसका रूप 'बाझो' होता है–

'भिस्त न मेरे चाहिए बाझ पियारे तुज्झ।'

जेम, ससिहर आदि शुद्ध अपभ्रंश के भी कई शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है। 'जेम' शब्द संस्कृत 'यद्व' से निकला है और ससिहर संस्कृत शशधर से। अपभ्रंश में संस्कृत के क का ग हो जाता है जैसे– प्रकट का प्रगट। कबीर ने मनमाने ढ़ंग से भी ऐसे परिवर्तन किए हैं। उपकारी का उन्होंने उपगारी बनाया है। संस्कृत के महाप्राण अक्षर प्राकृत और अपभ्रंश में प्रायः ह रह जाते हैं जैसे– शशधर से ससिहर। कबीर में इसका विपर्यय भी मिलता है। उन्होंने दहन को दाझन कहा है।

फारसी के एक ही शब्द का हमने ऊपर उदाहरण दिया है। यत्र-तत्र फारसी-अरबी के शब्द तो उनमें मिलते ही हैं, उनके कुछ पद ऐसे भी हैं, जिनमें अरबी और फारसी शब्दों की ही भरमार है। उदाहरण के लिए उनकी पदावली का 258वाँ पद ले लीजिए, जिसकी दो पंक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते हैं–

'हमरकत रहबरहुँ समाँ मैं खुर्दा सुभाँ विसियार।
हमजिमीं आसमाँन खलिंक, गुंदा मुसकिल कार॥'

हम कह चुके हैं कि कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, इसी से वे बाहरी प्रभावों के बहुत अधिक शिकार हुए। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमें नहीं मिलती, या यह भी संभव है कि उन्होंने जान बूझकर अनेक प्रान्तों के शब्दों का प्रयोग किया हो अथवा शब्दभाण्डार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो, उन्होंने अपनी कविता में रख दिया हो। शब्दों को उन्होंने तोड़ा-मरोड़ा भी बहुत है। सन को सनि सनां सूँ-चाहे जिस रूप में तोड़-मरोड़कर उन्होंने आवश्यकतानुसार अपनी उक्तियों में ला बैठाया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता या प्रसाद का सर्वथा अभाव है। कहीं-कहीं उनकी भाषा बिलकुल गँवारू लगती है,

पर उनकी बातों में खरेपन की मिठास है, जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारपन डूब जाता है।

(शीर्ष पर वापस)

उपसंहार

हिंदी के काव्यसाहित्य में कबीर के स्थान का निर्णय करना कठिन है, तुलना के लिए एक ही क्षेत्र के कवियों को लेना चाहिए। कबीर का काव्य मुक्तक क्षेत्र के अंतर्गत है। उसमें भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है और कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुन्दरदास आदि ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्त कवियों में वे सहज ही सबसे बढ़कर हैं। नानक, दादू आदि में कबीर की ही पुनरावृत्तियाँ हैं, परंतु आँचल में अस्वाभाविकता भी वे खूब बाँध लाए हैं। नीतिकाव्य की सफलता की कसौटी उसकी सर्वप्रियता है। कबीर के नीतिकाव्य की सर्वप्रियता न वृन्द को प्राप्त हुई और न रहीम को। रहीम में कबीर के भाव ज्यों के त्यों मिलते हैं। कहीं-कहीं तो दोहे का दोहा रहीम ने अपना लिया है, यथा-

'कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारै हाथ करि सो पैसे घर माँहि॥ '

-कबीर।

'रहिमन घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै सो जावै घर माँहिं॥ '

-रहीम।

वृन्द और कबीर की विदग्धता एक सी है। रहस्यवादी कवियों में भी कबीर का ही आसन सबसे ऊँचा है, शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों का रहस्यवाद तो उनके प्रबन्ध के बीच-बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबन्ध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है। अन्य क्षेत्रों के कवियों के साथ कबीर की तुलना की ही नहीं जा सकती। तुलसी और सूर कविता के साम्राज्य में सर्वसम्मति से और सब कवियों की पहुँच के बाहर हैं। चन्दकृत पृथ्वीराजरासो नामक जो प्रक्षिप्त महाकाव्य प्रसिद्ध है, उसी में उनके महत्त्व का बहुत कुछ दर्शन हो जाता है। अतएव जब तक उनकी रचना के विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उनको किसी के साथ तुलना के लिए खड़ा करना उन पर अन्याय करना है। केशव को काव्यशास्त्र का आचार्य भले ही मान लें, पर उनको नैसर्गिक कवियों में गिनना

कवित्व का तिरस्कार करना है। बिहारी की कोटि के कवियों की कविता को सच्ची स्वाभाविक कविता में गिनने में भी संकोच हो सकता है। मूँड़-मुँड़ाकर शृंगार के पीछे पड़ने वाले सब कवि इसी श्रेणी में हैं, पर भूषण, जायसी और कबीर में कौन बड़ा है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। तीनों में सच्चे कवि की आकुलता विद्यमान है और अपने क्षेत्र में तीनों की पूरी पहुँच है, तीनों एक श्रेणी के हैं, फिर भी यदि आध्यात्मिकता को भौतिकता से श्रेष्ठ ठहराकर कोई कबीर को श्रेष्ठ ठहरावे तो रुचिस्वातन्त्रय के कारण उसे यह अधिकार है। प्रभाव से यदि श्रेष्ठता मानें तो तुलसी के बाद कबीर का ही नाम आता है, क्योंकि तुलसी को छोड़कर हिंदीभाषी जनता पर कबीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।

8

कबीर के दोहे

कस्तूरी कुन्डल बसे, मृग ढूढ़ै बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि।
कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन् कुल खोय।।
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में प्रलय होयगी, बहुरि करेगौ कब।।
कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद।
नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद।।
कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।
करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहां से खाय।।
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब।।
कर बहियां बल आपनी, छोड़ बीरानी आस।
जाके आंगन नदि बहे, सो कस मरत प्यास।।
कथनी कथी तो क्या भया जो करनी ना ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूं देखत ही ढ़हि जाइ।।

कबिरा गरब न कीजिये, कबहूं न हंसिये कोय।
अबहूं नाव समुंद्र में, का जाने का होय।।
कबीरा गर्व ना किजीये, उंचा देख आवास।
काल परौ भुइं लेटना, उपर जमसी घास।।
कबीरा खड़ा बजार में, सब की चाहे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।
कबीरा सोई पीर हैं, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।
कबीरा ते नर अँध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहीं ठौर।।
कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान।
जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान।।
कबीर सुता क्या करे, करे काज निवार।
जिस पंथ तू चलना, तो पंथ संवार।।
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि।।
कबीर तूं काहै डरै, सिर पर हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहि डोलिये, कुकर भूखे साथ।।
कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार।
ग्यान षड्ग गहि, काल सिरि, भली मचाई मार।।
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमैया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ।।
कबीर नवै सब आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय।।
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम।।
सतनाम जाने बिना, हंस लोक नहिं जाए।
ज्ञानी पंडित सूरमा, कर कर मुये उपाय।।
सुख में सुमिरन ना किया, दु:ख में करते याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।
साई इतना दीजिए जामें कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय।।
सुमिरन करहु राम का, काल गहै है केस।
न जानो कब मारिहै, का घर का परदेस।।
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच हें, वाके हिरदय आप।।
सहज सहज सब कोऊ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं विषया तजी, सहज कहीजै सोइ।
सुखिया सब संसार है खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रोवै।।
सात समंदर की मसि करौं लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं हरि गुण लिखा न जाइ।।
सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भांड तोड़ि करि, रहै निराला होय।।
साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै थोथा देई उड़ाय।।
साधू गाँठ न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरी खड़े जब माँगे तब देय।।
शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन।।
जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोओ तू फूल।
ताहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।।
जो जल बाढ़े नांव में, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।
जो गुरु ते भ्रम न मिटे, भ्रान्ति न जिसका जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय।।
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी बन डरी, रही किनारे बैठ।।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।
जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।
यह आपा तो ड़ाल दे, दया करे सब कोय।।

जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं वहाँ काम।
दोनों कबहूँ नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम।।
जहां दया तहं धर्म है, जहां लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तहं काल है, जहां क्षमा आप।।
जैसे तिल में तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा साई तुझ में है, तू जाग सके तो जाग।।
जब में था हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिटी गया, जब दीपक देख्या माहिं।।
जब तूं आया जगत् में, लोग हसें तू रोए।
एसी करनी ना करी, पाछे हसें सब कोए।।
जीवत समझे जीवत बुझे, जीवत ही करो आस।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आस।।
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव।।
ज्यों नैनों में पुतली, त्यों मालिक घट माहिं।
मूरख लोग ना जानहीं, बाहिर ढूंढ़न जाहिं।।
पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंड़ित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंड़ित होय।।
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रूचौ, सीस देइ ले जाय।।
पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि की जोत।।
पूरब दिसा हरि को बासा, पश्चिम अलह मुकामा।
दिल महं खोजु, दिलहि में खोजो यही करीमा रामा।।
पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय।
एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय।।
पहले अगन बिरहा की, पाछे प्रेम की प्यास।
कहे कबीर तब जानिए, नाम मिलन की आस।।
पाहन पूजै हरि मिले, तो मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।।
परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि।

खूणैं बेसिर खाइय, परगट होइ दिवानि।।
परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं।।
पूरा सतगुरु न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिनि के, घर-घर माँगी भीख।।
चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ कै, साबित गया न कोय।।
चारिउं वेदि पठाहि, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूंढ़े खेत।।
चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।।
माली आवत देख कै कलियन करी पुकार।
फूली-फूली चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मन का डार दे, मन का मनका फेर।।
माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर।
आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर।।
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि-भ्रमि ईवै पडंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान ते, एक आध उबरंत।।
मन माया तो एक हैं, माया नहीं समाय।
तीन लोक संसय परा, काहि कहूं समझाय।।
माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूगी तोय।।
मूरख संग ना कीजिए, लोहा जल ना तिराइ।
कदली, सीप, भुजंग-मुख, एक बूंद तिहँ भाइ।।
मांगण मरण समान है, बिरता बंचौ कोई।
कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोहि।।
मुंड मुंडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम।
राम नाम कहू क्या करे, जे मन के औरे काम।।
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।

एक राम दशरथ का प्यारा, एक राम का सकल पसारा।
एक राम घट-घट में छा रहा, एक राम दुनिया से न्यारा।।
एकै साध सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूले फल अघाय।।
ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोइ।
आपन को सीतल करे, और हु सीतल होइ।।
एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारी।
है जैसा– तैसा रहे, कहे कबीर बिचारी।।
धरती सब कागद करूं, लेखनी सब बनराय।
साह सुमुंद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय।।
धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, तु आए फल होय।।
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर सत्त गुन हरि सोई।
कहै कबीर राम रमि रहिये हिन्दू तुरक न कोई।।
रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कोड़ी बदले जाय।।
लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं चली, हो गई लाल गुलाल।।
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट।।
ऊंचे कुल का जनमिया, जे करणी ऊंच होइ।
सुबण कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोइ।।
उठा बगुला प्रेम का तिनका चढ़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास।।
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपनै, गोबिंद दियो मिलाय।।
गुरु कीजिए जानि के, पानी पीजै छानि।
बिना विचारे गुरु करे, परे चौरासी खानि।।
गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिर फिर गोता खाहि।।
गुरु लोभ शिष लालची, दोनों खेले दाँव।

दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाँव।।
गाँठि न थामहिं बाँध ही, नहिं नारी सो नेह।
कह कबीर वा साधु की, हम चरनन की खेह।।
हीरा पड़ा बाजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारख लिया उठाय।।
तिनका कबहुँ ना निंदये, जो पाँव तले होय।
कबहुँ उड़ आँखो पड़े, पीर घानेरी होय।।
बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।।
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागे अति दूर।।
बोली एक अनमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि।।
दोष पराए देख कर चल्या हंसत हंसत।
अपनै चीति न आबई जाको आदि न अंत।।
दर्शन करना है तो, दर्पण माँजत रहिये।
दर्पण में लगी कई, तो दर्श कहाँ से पाई।।
दु:ख में सुमिरन सब करे सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे दु:ख काहे को होय।।
नये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय।।
निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।
आय हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे जात जंजीर।।
अकथ कहानी प्रेम की, कुछ कही न जाये।
गूंगे केरी सर्करा, बैठे मुस्काए।।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।।
यह तन विषय की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान।।

9

बीजक

'बीजक' कबीर वाणी का प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। यह कबीर द्वारा ही लिखा गया है, इसमें सन्देह है। कबीर ने जिस भाषा और शैली में अपनी वाणी कही है, वह उनके साहित्यिक एवं शास्त्रीय निष्ठा का प्रमाण नहीं देती। कबीर की साखी यह कहती है-कबीर संसा दूर करु, पुस्तक देई बहाय।

और जनश्रुति यह कहती है कि मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। तब उन्होंने बीजक ग्रन्थ लिखा होगा, इसमें बहुत सन्देह होता है।

मौखिक उपदेश

कबीर ने तो अपने सिद्धान्त और उपदेश मौखिक रूप में ही दिये। उन्होंने सदैव 'कहै कबीर सुनो भाई सन्तो' ही कहा, 'लिखै कबीर पढ़ो भाई सन्तो' जैसी पंक्ति कभी नहीं लिखी, अतः जो वाणी उन्होंने कही, वह मौखिक रूप में ही प्रचारित हुई। यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे उनके शिष्यों ने लिखा और कबीर के नाम से प्रचारित किया। यह भी सम्भव है कि शिष्यों की बहुत सी वाणी कबीर के नाम से ही प्रचारित हुई हो। यही कारण है कि आज कबीर के नाम से लगभग 61 ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें से काफी संख्या ऐसे ग्रन्थों की है, जो कबीर के बाद लिखे गये और जिनमें उन सिद्धान्तों की चर्चा है, जिनमें बाह्याचार और कर्मकाण्ड का निरूपण विशेष रूप

से हुआ। कबीर ने बाह्याचार और कर्मकाण्ड की सदैव ही निन्दा की। अतः वे ग्रन्थ कबीर द्वारा निर्मित नहीं हो सकते।

बीजक मूल ग्रंथ

कबीरपन्थियों तथा सामान्य पाठकों में 'बीजक' कबीर साहब के सिद्धान्तों का मूल ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि कबीर की चोरी से उनका एक भक्त भगवानदास 'बीजक' की प्रति को ले भागा। कहते हैं बीजक लेकर भागने के कारण ही यह भगवानदास 'भग्गू' के नाम से निन्दित हुआ। 'बीजक' की टीका लिखने वाले 'विश्वनाथ सिंह जू देव' ने कबीर साहब के द्वारा कही गयी बीजक के सम्बन्ध में कुछ चौपाइयों का निर्देश किया है–

"भग्गूदास की खबरि जनाई। ले चरनामृत साधु पियाई॥
कोऊ आप कह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रन्थ चोराइ ले गयऊ॥
सतगुरु कह वह निगुरा पन्थी। काह भयौ लै बीजक ग्रन्थी॥
चोरी करि वै चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई।
बीजमूल हम प्रगट चिह्नाई। बीज न चीह्नो दुर्मीत लाई॥"

कबीरपन्थी 'महात्मा पूरन साहेब' ने कबीर साहब के मुख्य ग्रन्थ मूल बीजक की जो टीका लिखी है, उसके अनुसार 'बीजक' के निम्नलिखित ग्यारह अंगों का निर्देश और विस्तार निम्न प्रकार से दिया है–

रमैनी –84,
शब्द –115,
ज्ञान चौंतीसा –34,
विप्रमतीसी –1,
कहरा –12,
वसन्त –12,
चाचर –2,
बेलि –2,
बिरहुली –1,
हिंडोला –3,
साखी –353।

इस भाँति बीजक में छन्दों की कुल संख्या 619 है।

'बीजक' शब्द तांत्रिक उपासना से सम्बद्ध ज्ञात होता है। बौद्ध तंत्र में जिन सूत्रों से रहस्यमय तत्त्व की उपलब्धि होती है, उन्हें 'बीज सूत्र' या 'बीजाक्षर'

का नाम दिया गया। इसी 'बीजाक्षर' में मन्त्रों की सृष्टि मानी गयी। इस भाँति बीजाक्षर से शब्द तत्त्व का भी बोध हुआ। बौद्ध धर्म की वज्रयानी परम्परा से कालान्तर में सन्त सम्प्रदाय के स्रोत मिलते हैं। इस सन्त सम्प्रदाय में शब्द का बहुत महत्त्व है। सन्त सम्प्रदाय के काव्य में 'शब्द' और 'साखी' का विशिष्ट अर्थ और महत्त्व समझा जाता है। इसी 'बीजक' ग्रन्थ में 'रमैनी' (37) में 'बीजक' के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है-

"एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई।।
तीसर सयान सयान दिखाई। चौथे सयान तहाँ ले जाई।।
पचये सयान न जाने कोई। छठये मा सब गैल बिगोई।।
सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउ देखाई।।"
बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीवको। बुझे बिरला कोय। ' -साखी

उपर्युक्त उद्धरण में 'बीजक' का सम्बन्ध 'शब्द' से ही जोड़ा गया है। सयान की मीमांसा निम्न प्रकार से समझी जा सकती है-

एक सयान-ब्रह्म,
दूसर सयान-माया,
तीसर सयान-त्रिगुण-(भक्ति, ज्ञान और योग),
चौथे सयान-चारों वेद,
पचयें सयान-पाँचों तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी),
छठयें सयान-मन के दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर),
सतयाँ सयान-शब्द।

इस भाँति 'बीजक' वास्तविक तत्त्व का बोधक है। यह तत्त्व संसार में गुप्त रहता है। 'बीजक' के द्वारा ही ब्रह्म के वास्तविक तत्त्व (शब्द) का बोध होता है, जिससे समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है।

बीजक का मुद्रण

कबीर की वाणियों में 'बीजक' का मुद्रण सबसे पहले हुआ। इसका कारण है कि कबीरपन्थी 'बीजक' को सर्वाधिक प्रामाणिक तथा आदरणीय ग्रन्थ मानते हैं। रीवा नरेश 'श्री विश्वनाथ सिंह' की टीका के साथ 'बीजक' 1872 ई. से पहले मुद्रित हुआ था। पादरी प्रेमचन्द, पूर्णदास, पादरी अहमदशाह, महर्षि शिवव्रत लाल, विचारदास, साधु लखन दास, हनुमान दास, भगवान साहब, गोस्वामी

साहब, महाराज राघवदास, हंसदास आदि अनेक विद्वानों तथा सन्तों ने 'बीजक' का मूलपाठ टीका सहित सम्पादित करके प्रकाशित कराया है।

अनुवाद

अहमदशाह ने 'बीजक ऑफ कबीर' का अंग्रेजी अनुवाद किया है।

हनुमान दास ने संस्कृत में 'बीजक' की व्याख्या प्रस्तुत की है। इसका प्रकाशन फतुहा पटना से हुआ है।

कबीर की सम्पूर्ण ग्रन्थावली का सम्पादन 'यामसुन्दर दास ने किया है। इसका प्रकाशन 1928 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ।

कबीर रचनावली का सम्पादन अयोध्यासिंह उपाध्याय ने किया है। इनके अलावा पदों तथा साखियों के अलग-अलग संकलन प्रकाशित हैं। ज्यादातर संकलन कबीरपन्थ से जुड़े सन्तों ने ही किया है।

'आचार्य क्षितिमोहन सेन' ने कबीर शीर्षक से चार भागों में कबीर की रचनाओं का संकलन किया है।

डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने सैंकड़ों ग्रन्थों की छानबीन करके ग्रन्थों को कबीर कृत न होने का प्रमाण प्रस्तुत किया है। तिवारी जी ने दादू पंथी शाखा की पाँच प्रतियों, निरंजनी शाखा की एक प्रति, गुरु ग्रन्थ साहब, दो बीजकों, दो शब्दावलियों, तीन साखी ग्रन्थों, एक सर्वंगी एक गुणगजनामा तथा आचार्य सेन की रचनाओं की तुलना करके कबीर ग्रन्थावली का मूल पाठ निर्धारित करने का प्रयत्न किया है।

भाषा

निरंजनी दोनों शाखाओं से सम्बन्धित प्रतियों पर राजस्थानी भाषा का व्यापक प्रभाव है। इनकी निरन्तर प्रतिलिपियाँ होती रहीं और भाषा का रूपान्तरण होता रहा। साखियों पर राजस्थानी का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है। पदों (सबद) तथा रमैनियों पर यह प्रभाव कम है। डॉक्टर पारसनाथ तिवारी ने इस भेद का कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया। वास्तव में साखियों में जो छन्द अपनाया गया है, वह अपभ्रंश का दूहा छन्द है। अपभ्रंश भाषा का केन्द्र राजस्थान, गुजरात तथा सिन्ध रहा है। अपभ्रंश का प्रचार-प्रसार लगभग सम्पूर्ण हिन्दी प्रदेश में हुआ। उत्तरवर्ती अपभ्रंश में पूर्वी क्षेत्र के कवियों ने रचनाएँ की हैं। सरहपा और कण्हपा के 'दोहा कोश' की भाषा अवहट्ठ है। यह भाषा राजस्थान से आभीरों के साथ

पूर्वी भारत में काव्य भाषा के रूप में पहुँची थी। विद्यापति ने भी अपनी दो रचनाओं 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' में इसी भाषा को माध्यम बनाया था। सरहपा से लेकर विद्यापति तक भाषा के दोहरे रूपों का प्रयोग परिलक्षित होता है। इन कवियों ने गीतों की रचना पूर्वी भाषा में की है और दोहों तथा प्रबन्ध काव्यों की रचनाएँ परम्परित काव्यभाषा अवहट्ठ में की हैं। कबीर का भाषिक आदर्श इसी परम्परा के अनुरूप है। इसीलिए उनकी भाषा में राजस्थानी तत्त्वों की अपलब्धता आश्चर्यजनक नहीं है।

बीजक कबीर का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ

बीजक के अतिरिक्त कबीर के नाम से प्रचलित अन्य वाणियाँ कबीर के द्वारा ही कही गयी हैं, क्योंकि उनमें प्रक्षेपों की भरमार है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि 120 वर्ष के लम्बे जीवन में उन्होंने बीजक के अतिरिक्त और कुछ कहा ही नहीं है। बीजक के अतिरिक्त भी उनकी बहुत सारी वाणियाँ हैं, परन्तु उनकी समस्त वाणियों में बीजक सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रसिद्ध वैष्णव सन्त नाभादास जी महाराज ने कबीर की प्रशंसा करते हुए जो छप्पय कहा है, उसकी एक पंक्ति है-'हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।

रमैनी, शब्द और साखी का यह क्रम किसी और 'कबीर वाणी' में नहीं, अपितु 'बीजक' में ही है। बीजक ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें कबीर का क्रान्तिकारी स्वरूप पूर्ण रूप उभरा है।

बीजक पदों का गूढ़त्व और सूत्रत्व

बीजक में कबीर ने अपने नामवाची कबीर, कबिरा, कबीरा, कबिरन, कबीरन आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसा उन्होंने क्यों किया, स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ टीकाकारों के ख्याल से ये शब्द एकार्थबोधक हैं और कबीर ने इन सबका प्रयोग अपने लिए ही किया है, केवल छन्द प्रवाह बनाये रखने के लिए मात्राओं में हेर-फेर है। कुछ अन्य टीकाकारों के ख्याल से उपरोक्त सभी शब्द भिन्न-भिन्न अर्थ बोधक हैं, परन्तु दोनों दृष्टि एकांगी हैं। उपर्युक्त सभी शब्द हर जगह कबीर के नाम एवं व्यक्तित्त्व से भिन्न अर्थ रखते हैं, ऐसी बात नहीं है, परन्तु हर जगह इन सबका एक ही अर्थ किया जाए तो पूरे अर्थ की संगति ही नहीं बैठ सकती। उदाहरणार्थ-

भ्रमि-भ्रमि कबिरा फिरै उदासय कबिरन ओट राम की पकरी,
अन्त चले पछिताईय कबिरन भक्ति बिगारिया,
कंकर पत्थर धोयय झूठा खसम कबीरन जानाय
कबिरा बनौरी गावैय तथा तामहँ भ्रमि-भ्रमि रहल कबीरा।

बीजक हमें बरबस ही सूत्र ग्रन्थों की याद दिलाता है, जिसमें छोटा-सा वाक्य बहुत बड़े अर्थगांभीर्य एवं भाव को छिपाये रहता है। बीजक में रूपक, प्रतीक, अन्योक्तिकथन, उलटवांसी शैली, कहीं पूर्वपक्ष की मान्यताओं का प्रदर्शन कराने के लिए कहे गये वचन आदि होने से हर सिद्धान्त के मानने को अपने दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना के लिए जगह मिल जाती है।

बीजक की अनेक टीकाएँ

देशी-विदेशी अनेक विद्वानों द्वारा बीजक को प्रामाणिक कबीर साहित्य मानकर उसकी अब तक दर्जनों टीकाएँ हो चुकी हैं तथा आज भी होती जा रही हैं। बीजक की अब तक हुई अनेक टीकाएँ ऐसी हैं, जिनकी भाषा-शैली पुरानी होने से वह आज सबकी समझ में ठीक से नहीं आती। कुछ में तो अर्थ अत्यन्त अस्पष्ट एवं भ्रामक हो गया है, और कुछ टीकाएँ तो ऐसी हुई हैं, जिनमें सारे पाखण्ड एवं कुरीतियों को जलाकर राख कर देने वाला कबीर का क्रान्तिकारी विदग्धात्मक रूप ही ओझल हो गया है और वहाँ पर कबीर को परम्परापोषित भक्तकवि बनाकर रख दिया गया है तथा उन्हें किसी अदृश्य, अज्ञात शक्ति के आगे गिड़गिड़ाने वाला भावुक भक्त बना डाला गया है।

10

कबीर के पद –कबीर

1.
प्रेम नगर का अंत न पाया, ज्यों आया त्यों जावैगा।
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या क्या बीता।
सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावैगा।
परली पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्ध्यान न धरिया।
टूटी नाव, ऊपर जो बैठा, गाफिल गोता खावैगा।
दास कबीर कहैं समझाई, अंतकाल तेरा कौन सहाई।
चला अकेला संग न कोई, किया अपना पावैगा।

2.
रहना नहीं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटे की बाड़ी, उलझ–पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है।

साखी

साखी संस्कृत 'साक्षी' का अपभ्रंश रूपान्तर है। जिसे सिद्धों ने 'उपदेश' कहा है, उसे ही सन्तों ने साखी कहा है। साखियों में उनके 'अनुभूत सत्य की

अभिव्यक्ति' हुई है। सन्त कवि इस प्रकार के विषयों को, विशेषकर अपनी साखियों तथा 'शब्दों, अर्थात् पदों के माध्यम द्वारा प्रकट प्रतिपादित करते हैं। 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का रूपान्तर है, जिसका अर्थ किसी बात को अपनी आँखों देख चुकने वाला और इसी कारण उसके सम्बन्ध में किसी प्रश्न के उठने पर, प्रमाणस्वरूप भी समझा जाने वाला व्यक्ति हुआ करता है तथा कदाचित् इसीलिए कबीर 'बीजक' में इस काव्य प्रकार का परिचय 'ज्ञान की आँखी' कहकर भी दिया गया है। इन साखियों में प्रधानत: ऐसे विषय ही आते दीख पड़ते हैं, जिन्हें सन्तों ने अपने दैनिक जीवन में भली-भाँति समझकर प्रमाणित कर लिया है अथवा जिन्हें वे अपनी निज की कसौटी पर पहले से कस चुकने के कारण साधिकार व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं।

परशुराम चतुर्वेदी का कथन है 'इसका अभिप्राय उस पुरुष से है, जिसने किसी वस्तु अथवा घटना को अपनी आँखों से देखा हो। इस कारण 'साखी' शब्द का तात्पर्य प्राय: उस पुरुष से हुआ करता है, जो उन वस्तुओं व घटनाओं के विषय में विवाद खड़ा होने पर निर्णय करते समय प्रमाण स्वरूप समझा जा सके। इस प्रकार 'साखी' शब्द फिर प्रसंगवश महापुरुषों के लिए प्रयुक्त होते-होते, पीछे उनके आप्तवचन का पर्याय बन गया होगा।

साखियों में प्राय: छन्द का प्रयोग किया गया है। दोहा के अलावा सोरठा, उपमान, मुक्तामणि, अवतार, दोहकीय और गीता छन्दों का भी प्रयोग है।

परशुराम चतुर्वेदी ने इसमें दोहा, चौपाई, 'याम, उल्लास, हरिपद, गीता, सार तथा छप्पै छन्दों का अन्वेषण किया है। साखी का विभाजन 'अंगों' में किया है। साखियों के कुल 53 अंग हैं। अंग विभाजन में एकरूपता तथा वैज्ञानिकता का अभाव दिखाई देता है। कबीर ने 'अंग' शब्द का प्रयोग लक्षण के अर्थ में किया है।

कबीर ग्रन्थावली में 'अंग' शब्द विषय-वस्तु का द्योतक है और साधना की यात्रा की क्रमिकता की हल्की झलक भी उसमें दिखाई देती है।

छंदो में प्रयोग

साखी रचनाएँ प्राय: 'दोहा' नामक छन्दों में पायी जाती है और कभी-कभी इन्हें 'सोरठा' में भी व्यक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त सन्तों की साखियों के अन्तर्गत बीच-बीच में सार, हरिपद, चौपाई, चौपई, दोही, सरसी, गीता, मुक्तामणि, 'याम उल्लास या छप्पय जैसे छन्द भी आ जाया करते हैं, जिनका

'दोहा' के साथ अधिक सम्बन्ध नहीं है। इन साखियों का एक पर्याय 'सलोक' भी समझा जाता है, जिसके उदाहरण सिखों के 'आदिग्रंथ' में मिलते हैं, परन्तु साखियों को जहाँ 'अंग' जैसे-शीर्षकों के नीचे विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया देखा जाता है, वहाँ 'सलोकों' के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। सन्तों की भाँति सूफी कवियों ने भी इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है, किन्तु उनके यहाँ इसे फुटकर रूपों में प्राय: 'दोहरा' नाम दिया गया मिलता है, जो प्रत्यक्षत: 'दोहा' शब्द का ही रूपान्तर है। दोहा एवं चौपाई छन्दों का एक साथ प्रयोग सूफी कवियों ने अपनी प्रेमगाथाओं में किया है, जिसका एक रूप कतिपय सन्तों की 'रमैनियों' में भी दीख पड़ता है। इन छन्दों के प्रयोग वाला एक दूसरा काव्य-प्रकार 'ग्रन्थ-बावनी' नाम से मिलता है, जिसकी द्विपदियों का आरम्भ क्रमश: नागरी लिपि के बावन अक्षरों से होता है और जिसकी पद्धति पर निर्मित 'अखरावती, 'ककहरा' आदि तथा फारसी लिपि के अक्षरानुसार लिखे जाने वाले 'अलिफनामा, 'सोहर्फी' आदि पाये जाते हैं।

11

कबीर का समकालीन समाज

महात्मा कबीरदास के जन्म के समय में भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा शोचनीय थी। एक तरफ मुसलमान शासकों की धर्मान्धता से जनता परेशान थी और दूसरी तरफ हिन्दू धर्म के कर्मकांड, विधान और पाखंड से धर्म का ह्रास हो रहा था। जनता में भक्ति-भावनाओं का सर्वथा अभाव था। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले थे। ऐसे संघर्ष के समय में, कबीरदास का प्रार्दुभाव हुआ। जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे, उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पंडितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढ़ंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को सम्भालने का प्रयत्न कर रहे थे।

भारतवर्ष कोई नया देश नहीं है। बड़े-बड़े साम्राज्य उसकी धूल में दबे हुए हैं, बड़ी-बड़ी धार्मिक घोषणाएँ उसके वायुमण्डल में निनादित हो चुकी हैं। बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ उसके प्रत्येक कोने में उत्पन्न और विलीन हो चुकी हैं। उनके स्मृति चिह्न अब भी इस प्रकार निर्जीव होकर खड़े हैं मानों अट्टाहस

करती हुई विजयलक्ष्मी को बिजली मार गई हो। अनादिकाल में उसमें अनेक जातियों, कबीलों, नस्लों और घुमक्कड़ खघानाबदोशों के झुण्ड इस देश में आते रहे हैं। कुछ देर के लिए इन्होंने देश के वातावरण को विक्षुब्ध भी बनाया है, पर अन्त तक वे दखल करके बैठ जाते रहे हैं और पुराने देवताओं के समान ही श्रद्धाभाजन बन जाते रहे हैं—कभी-कभी अधिक सम्मान भी पा सके हैं। भारतीय संस्कृति कि कुछ ऐसी विशेषता रही है कि उन कबीलों, नस्लों और जातियों की भीतरी समाज-व्यवस्था और धर्म-मत में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया है और फिर भी उनको सम्पूर्ण भारतीय मान लिया गया है। भागवत में ऐसी जातियों की एक सूची देकर बताया गया है कि एक बार भगवान का आश्रय पाते ही ये शुद्ध हो गई है। इनमें किरात हैं, हूण हैं, आंध्र हैं, पुलिंद हैं, पुक्कस हैं, आभीर हैं, शुंग हैं, यवन हैं, खस हैं, शक हैं और भी निश्चय ही ऐसी बहुत सी जातियाँ हैं, जिनका नाम भागवताकार नहीं गिना गए।

समकालीन भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति इतने अतिथियों का अपना सकी थी, इसका कारण यह है कि बहुत से शुरू से ही उसकी धर्म-साधना वैयक्तिक रही है। प्रत्येक व्यक्ति को अलग से धर्मोपासना का अधिकार है। झुँड बाँधकर उत्सव हो सकते हैं, भजन नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने किए का जिम्मेदार आप ही है। श्रेष्ठता कि निशानी किसी धर्म-मत को मानना या देव विशेष की पूजा करना नहीं, बल्कि आचार-शुद्धि और चारित्य है। यदि एक आदमी अपने पूर्वजों के बताए धर्म पर दृढ़ है, चरित्र से शुद्ध है, दूसरी जाति या व्यक्ति के आचरण की नकल नहीं करता, बल्कि स्वधर्म में मर जाने को ही श्रेयस्कर समझता है, ईमानदार है, सत्यवादी है तो वह निश्चय ही श्रेष्ठ है, फिर वह चाहे आभीर वंश का हो या पुक्क्स श्रेणी का। कुलीनता पूर्वजन्म के कर्म का फल है। चारित्य इस जन्म के कर्म का प्रतीक है।

देवता किसी एक जाति की सम्पत्ति नहीं हैं, वे सबके हैं, और सबकी पूजा के अधिकारी हैं, पर यदि स्वयं देवता ही चाहते हों कि उनकी पूजा का माध्यम कोई विशेष जाति या व्यक्ति हो सकता है तो भारतीय समाज को इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है। ब्राह्मण मातंगी देवी की पूजा करेगा, पर मातंग के जरिए। क्या हुआ जो कि मातंग चांडाल है। राहु यदि प्रसन्न होने के लिए डोमों को ही दान

देना अपनी शर्त रखते हैं तो डोम सही हैं। समस्त भारतीय समाज डोम को ही दान देकर ग्रहण के अनर्थ से चन्द्रमा की रक्षा करेगा। इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने समस्त जातियों को उनकी सारी विशेषताओं समेत स्वीकार कर लिया, पर अब तक कोई ऐसा 'मजहब' उसके द्वार पर नहीं आया था। वह उसको हजम कर सकने की शक्ति नहीं रखता था।

12

कबीर की रचनाएँ

कबीरदास ने हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटा कर हिन्दू-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयांगम कर लिया। संत कबीर ने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से बोले और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। कबीरदास अनपढ़ थे। कबीरदास के समस्त विचारों में राम-नाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्ति, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे। कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं-

1. रमैनी
2. सबद
3. साखी

इसमें वेदांत तत्त्व, हिन्दू-मुसलमान को फटकार, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधन की गौणता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं। सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धांत के उपदेश मुख्यतः 'साखी' के भीतर हैं, जो दोनों में हैं। इनकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी और पंजाबी मिली खड़ी

बोली है, पर 'रमैनी' और 'सबद' में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार को, झूठे रंग न भूलि।। -कबीर
काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट ।। -कबीर
हम देखत जग जात हैं, जब देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह ।। -कबीर

बीजक

'बीजक' कबीरदास के मतों का पुराना और प्रामाणिक संग्रह है, इसमें संदेह नहीं। एक ध्यान देने योग्य बात इसमें यह है कि 'बीजक' में 84 रमैनियाँ हैं। रमैनियाँ चौपाई छंद में लिखी गई हैं। इनमें कुछ रमैनियाँ ऐसी हैं। जिनके अंत में एक-एक साखी उद्धृत की गई है। साखी उद्धृत करने का अर्थ यह होता है कि कोई दूसरा आदमी मानों इन रमैनियों को लिख रहा है और इस रमैनी-रूप व्याख्या के प्रमाण में कबीर की साखी या गवाही पेश कर रहा है। जालंधरनाथ के शिष्य कुण्णपाद (कानपा) ने कहा है– 'साखि करब जालंधरि पाए, अस्तु बहुत थोड़ी-सी रमैनियाँ (नं. 3, 28 32, 42, 56, 62, 70, 80) ऐसी हैं, जिनके अंत में साखियाँ नहीं हैं, परंतु इस प्रकार उद्धृत करने का क्या अर्थ हो सकता है? इस पुस्तक में मैंने 'बीजक' को निस्संकोच प्रमाण-रूप में व्यवहृत है, पर स्वय 'बीजक' ही इस बात का प्रमाण है कि साखियों को सबसे अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए, क्योंकि स्वंय 'बीजक' ने ही रमैनियों की प्रामाणिकता के लिए साखियों का हवाला दिया है। इसीलिए कबीरदास ए सिद्धांतों की जानकारी का सबसे उत्तम साधन साखियाँ है।

कबीर रचनावली

कबीरदास की वाणियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर उनमें सबसे अच्छा सुसंपादित संस्करण अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'कबीर' रचनावली है। यह भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा का ही प्रकाशन है। कबीरदास के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका एक-न-एक खास प्रयोजन है। जब

उन्होंने 'अवधू' या 'अवधूत' को पुकारा है तो यथासंभव अवधूत की ही भाषा में उसी के क्रिया-कलाप की आलोचना की है। इस प्रसंग में उनकी युक्ति और तर्कशैली पूर्णरूप से अवधूत-जैसी रहती है, जब वे पंडित या पाँडे को संबोधित करते हैं तो वहाँ भी उनका उद्देश्य पंडित की ही भाषा में पंडित की ही युक्तियों के बल पर उसके मत का निरास करना होता है। इसी तरह मुल्ला, काजी आदि संबोधनों को भी समझना चाहिए। जब वे अपने-आपको या संतों को संबोधित करके बोलते हैं तब वे अपना मत प्रकट करते जान पड़ते हैं। वे अपने मत के मानने वाले को ही 'संत' या साधु कहते हैं। साधारणत: वे 'भाई' संबोधन के द्वारा साधारण जनता से बात करते हैं और जब कभी वे 'जोगिया' को पुकार उठते हैं तो स्पष्ट जी जान पड़ता है कि इस भले आदमी के संबंध में उनकी धारणा कुछ बहुत अच्छी नहीं थी। यह दावा किया गया है कि गुरु-परपरा की जानकारी रखने वाले लोग कबीरदास के आत्म-संबोधन में एक निश्चित संकेत की बात बताया करते हैं।

अवधू और अवधूत

भारतीय साहित्य में यह 'अवधू' शब्द कई संप्रदायों के सिद्ध आचर्यों के अर्थ में व्यवहुत हुआ है। साधारणत: जागातिक द्वंद्वों से अतीत, मानापमान-विवर्जित, पहुँचे हुए योगी को अवधूत कहा जाता है। यह शब्द मुख्यतया तांत्रिकों, सहजयानियों और योगियों का है। सहजयान और वज्रयान नामक बौद्ध तांत्रिक मतों में 'अवधूती वृत्ति' नामक एक विशेष प्रकार की यौगिक वृत्ति का उल्लेख मिलता है। आठवीं शताब्दी के बाद से नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यायतनों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह एक नवीन ढ़ंग का तांत्रिक और योगक्रियामूलक धर्म था। इस नवीन तांत्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया जाता है-सहजयान, वज्रयान और कालचक्रयान। इन मतों की अधिकांश पुस्तकें आज तिब्बती अनुवाद के रूप में ही सुरक्षित हैं। स्व. हरप्रसाद शास्त्री ने 'चर्याचयीविनिश्चय, 'दोहाकोष, 'अद्वयवज्रसंग्रह' और 'गुह्य-समाजतंत्र' आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सहजयान और वज्रयान में बहुत कुछ समानता है। शास्त्री जी ने जो चर्यापद प्रकाशित कराए हैं, उनमें आर्यदेव, भूसुक, कान्ह, सरह, लुई आदि आचार्यों के पद हैं, जिन्हें तिब्बती साहित्य में सिद्धाचार्य कहा गया है। ये आचार्यगण सहजवस्था की बात करते हैं। सहजावस्था को प्राप्त करने पर ही साधक अवधूत होता है।

तंत्र-ग्रंथों में चार प्रकार के अवधूतों की चर्चा है-ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, भक्तावधूत और हंसावधूत। हंसावधूतों में जो पूर्ण होते हैं वे परमहंस और जो अपूर्ण होते हैं वे परिव्राजक कहलाते हैं (प्राण्तोषिणी)। परंतु कबीरदास ने न तो इतने तरह के अवधूतों की कहीं कोई चर्चा ही की है और न ऊपर 'निर्वाण-तंत्र' के बताए हुए अवधूत से उनके अवधूत की कोई समता ही दिखाई है। 'हंसा' की बात कबीरदास कहते जरूर हैं, पर वे हंस और अवधूत को शायद ही कहीं एक समझते हों। वे बराबर हंस या पक्षी शुद्ध और मुक्त जीवात्मा को ही कहते हैं। इसी भाव को बताने के लिए भर्तृहरि ने कहा है कि इस अवधूत मुनि की बाह्य क्रियाएँ प्रशमित हो गई हैं। वह न दु:ख समझता है, न सुख को सुख। वह कहीं भूमि पर सो सकता है कहीं पलंग पर, कहीं कंथा धारण कर लेता है, कहीं दिव्य वसन, कहीं मधुर भोजन पाने पर उसे भी पा लेता है। 'किंतु कबीरदास इस प्रकार योग में भोग को पंसद नहीं करते। यद्यपि इन योगियों के संप्रदाय के सिद्धों को ही कबीरद अवधूत कहते हैं तथापि वे साधारण योगी अवधूत के फर्क को बराबर याद रखते हैं। साधारण योगी के प्रति उनके मन में वैसा आदर का भाव नहीं है जैसा अवधूत के बारे में है। कभी-कभी उन्होंने स्पष्ट भाषा में योगी को और अवधूत को भिन्न रूप से याद किया है। इस प्रकार कबीरदास का अवधूत नाथपंथी सिद्ध योगी है।

प्रसिद्ध है कि एक बार काशी के पंडितों में द्वैत और अद्वैत तत्त्व का शास्त्रार्थ बहुत दिनों तक चलता रहा। जब किसी शिष्य ने कबीर साहब का मत पूछा तो उन्होंने जवाब में शिष्य से ही कई प्रश्न किए। शिष्य ने जो उत्तर दिया उसका सार-मर्म यह था कि विद्यमान पंडितों में इस विषय में कोई मतभेद नहीं है कि भगवान, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श से परे हैं, गुणों और क्रियाओं के अतीत हैं, वाक्य और मन के अगोचर हैं। कबीरदास ने हँसकर जवाब दिया कि भला उन लड़ने वाले पंडितों से पूछो कि भगवान रूप से निकल गया, रस से निकल गया, रस से अतीत हो गया, गुणों के ऊपर उठ गया, क्रियाओं की पहुँच के बाहर हो रहा, वह अंत में आकर संख्या में अटक जाएगा? जो सबसे परे है, वह क्या संख्या के परे नहीं हो सकता? यह कबीर का द्वैताद्वैत-विलक्षण समतत्त्ववाद है।

निरंजन कौन है?

मध्ययुग के योग, मंत्र और भक्ति के साहित्य में 'निरंजन' शब्द का बारम्बार उल्लेख मिलता है। नाथपंथ में भी 'निरंजन' शब्द खूब परिचित है। साधारण रूप में 'निरंजन' शब्द निर्गुण ब्रह्म का और विशेष रूप से शिव का

वाचक है। नाथपंथ की भाँति एक और प्राचीन पंथ भी था, जो निरंजन पद को परमपद मानता था। जिस प्रकार नाथपंथी नाथ को परमाराध्य मानते थे, उसी प्रकार ये लोग 'निरंजन' को। आजकल निरंजनी साधुओं का एक सम्प्रदाय राजपूताने में वर्तमान है। कहते हैं, इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान (निर्गुण) के उपासक थे।

बंगाल के पश्चिमी हिस्सों तथा बिहार के पूर्वी जिलों में आज भी एक धर्ममत है, जिसके देवता निरंजन या धर्मराज हैं। एक समय यह सम्प्रदाय झारखण्ड और रीवाँ तक प्रचलित था। बाद में चलकर यह मत कबीर सम्प्रदाय में अंतर्भुक्त हो गया और उसकी सारी पौराणिक कथाएँ कबीर मत में गृहीत हो गई, परन्तु उनका स्वर बदल गया। नाथपंथ में निरंजन की महिमा खूब गाई गई है। हठयोगी जब नादानुसंधान का सफल अभ्यासी हो जाता है तो उसके समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं, उसके चित्त और मारुत निरंजन में लीन हो जाते हैं। यह योगी का परम साध्य है, क्योंकि जब तक ज्ञान निरंजन के साक्षात्कार तक नहीं उठता तभी तक इस संसार के विविध जीवों और नाना पदार्थों में भेद-दृष्टि बनी हुई है।,

कबीर की आवश्यकता और मूल्यांकन

कबीर जो सदैव आलोचकों के केंद्र में रहे हैं, जहाँ साहित्यिक जगत में न जाने क्यों कबीर की रचनाओं को लेकर खींचतान की जा रही है। कबीर को कोई समाज सुधारक बोलता है, कोई कवि बोलता है और कोई भक्त बोलता है, क्या कबीर के काव्य को विशिष्टता का रूप देना आवश्यक है।

इसे साधारण मनुष्य जीवन की अभिव्यक्ति नहीं कहा जा सकता, आधुनिक समाज क्यों कबीर मठों के नाम पर कबीर की विचारधारा को विपरीत प्रवृत्ति प्रदान कर रहा है। कबीर ना ही किसी समाज का निर्माण करना चाहते थे, ना ही अपने नाम पर मठ स्थापना करवाना चाहते थे अपनी उस स्थिति से प्रताड़ित थे, जो अस्वीकृत रुप से उन्हें जन्म के साथ मिली द्य कभी-कभी आलोचक कबीर व गांधी का अध्ययन एक साथ करते हैं। यह मेरी समझ के बाहर है कि गांधी राजनीति क्षेत्र के सुधारक रहे तो कबीर से तुलना या उनकी विचारधारा से समानता कहां स्थापित होती है। मेरे अनुसार कबीर धर्म की उस प्रणाली से प्रताड़ित थे, जो समाज पर अपना पूर्ण आवरण स्थापित किए हुए थी।

एक साधारण मानव जब वैचारिक रूप से अपनी स्थिति का कारण व निवारण ज्ञात कर लेता है तथा उसे स्पष्ट कर मानव समाज को सतर्क कर देता है तो उसे क्यों कवि, सुधारक या भक्त का रूप देकर उसकी अंधभक्ति करना आवश्यक हो जाता है। जहाँ केवल मनुष्य केंद्रित रह जाता है, परंतु उसकी विचारधारा गौड़ रूप ले लेती है।

कबीर के विचार आज के समय में अधिक प्रासंगिक लगते हैं, जहाँ धर्म व आडंबरों के आधार पर मानवता का गुण समाप्त हो चुका हो, वहाँ आवश्यक है कि कवि को उनके दोहों के साथ याद किया जाए। उनको किसी एक परिपाटी में नहीं, बल्कि एक साधारण मनुष्य की परिस्थिति, वैचारिक गुणवत्ता के आधार पर प्रस्तुत किया जाए, उनके दोहों का सार स्पष्ट किया जाए, फलतः कबीर के द्वारा प्रधान माना गया मानवता का गुण सर्वव्यापी हो सकेगा, एक भक्ति काल का समय था, जब आध्यात्मिक व नैतिक विचारों की आवश्यकता समाज में संतुलन बनाने के लिए जरूरी थी, एक आज का समय है आध्यात्मिक विचार व नैतिक विचार मानवता को समाप्त करने की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं, क्यों इसका मुख्य कारण वही है, जो भक्ति काल में था, तब भी मानव जाति के आध्यात्मिक नियमों का अर्थ मूल से भटक गया था और आज भी मूल अर्थ से भिन्न ही लिया जा रहा है। तो आज कबीर के विचारों के आध्यात्मिक नियमों, धर्म, दर्शन व रहस्य का महत्व व मूल अर्थ स्पष्ट करने के लिए कबीर की वाणी की आवश्यकता है, जो दोबारा मानव मस्तिष्क को एक सकारात्मक दृष्टिकोण देने का कार्य करेगी।

लाख मनाएं के माने नाही,
मूल अरथ पहिचाने नाही।
तब भी अनपढ़ कहात रहे,
अब भी अनपढ़ कहात है।
कौन धुरी तुम घुमाएं विकास की,
की तबसे अब तक समझे ही नाही।
कबीर की वाणी तबइ सै सर्वग्राही,
आज फिर सै सार्थक लागे माही।

❐❐❐